विषय-सूची

परिचय

किसी भी देश के निवासियों का शारीरिक अभ्युदय उस देश के अभ्युदय का प्रमाण होता है। कोई भी देश संसार में ऐसा न मिलेगा जिसके निवासियों का शारीरिक ह्रास हो गया हो और वह देश उन्नत हो। जब जिस देश का अभ्युदय होता है, तब उस देश के स्त्री-पुरुष स्वस्थ और नीरोग होते हैं और जब उसी देश का पतन-काल होता है तो वही स्त्री-पुरुष दरिद्र, अस्वस्थ और रोगी हो जाते हैं।

संसार के अन्य देशों की भाँति, भारतवर्ष की भी यही अवस्था हुई। जब हमारा देश उन्नत था, तो हम लोगों में स्वास्थ्य और नीरोग जीवन था, परंतु आज जब देश के अभ्युदय की सभी बातें नष्ट हो चुकी हैं, तो हमने अपनी अन्य सभी बातों के साथ स्वास्थ्य और नीरोग जीवन को भी नष्ट कर दिया है। इसके साथ ही, यह भी देखने की बात है कि इधर जब से देश, अभ्युदय की ओर आगे बढ़ा है, फिर से हम लोगों में शारीरिक उन्नति का श्रीगणेश हुआ है।

अभ्युदय का उषाकाल है, इसी समय हिन्दी को राजभाषा होने का सौभाग्य मिला है। इस नवजीवन को पाकर हिन्दी कितनी तत्परता के साथ, कितने उत्साह के साथ आगे बढ़ी है,

यह बताना यहाँ पर अधिक प्रासंगिक न होगा। इसलिए इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि अपनी अन्यान्य बातों के साथ-साथ हिन्दी में स्वास्थ्य और आरोग्यता पर जिस प्रकार साहित्य का प्रणायन हुआ है और हो रहा है, वह कम संतोपजनक नहीं है। केवल इसी विषय पर, हिन्दी-भाषा को जो प्रासाद निर्माण करना है, वह कितना विशाल है, कितना महान है, इसका आज अनु-मान करना भी कठिन है! उस अत्यंत विशाल, अत्यंत महान प्रासाद की जो रचना हो रही है, उसमें सहायता करने की सद्-भावना से, इस पुस्तक का लेखक, इस पुस्तक के रूप में, मिट्टी के कुछ कणों को लेकर, उपस्थित हुआ है, कदाचित् ये कण, उस अत्यंत विशाल प्रासाद के निर्माण में कुछ सहायता कर सकें !!

पाठक और पाठिकाओं से एक प्रार्थना है। वे संसार की ओर आँखें खोलकर देखें। अपने जीवन के महत्व को पहचानें और अपने आपको ऊँचे उठाने की चेष्टा करें। जब वे ऐसा करेंगे, तो देखेंगे कि हमारे स्वास्थ्य और नीरोग जीवन से बढ़ कर हमारे जीवन में और कुछ नहीं है! जीवन का सर्वस्व, हमारे प्राणों का प्राण, हमारा स्वास्थ्य है, हमारी नीरोग अवस्था है !!

इसके लिए हमारे सामने किसी प्रकार की ाई नहीं है। हम जैसा चाहें, बन सकते हैं और जितना चाहें बिगड़ सकते हैं। हमारा सुख और दुख हमारे हाथों में है। स बात

ा विश्वास करके हमें अपने जीवन को महत्वपूर्ण बनाना ाहिए। इसके लिए बहुत सुगम मार्ग है। हमें सभी प्रकार के ाडम्बर छोड़ देना चाहिए। अपने जीवन की सभी बातों में में प्रकृति का अनुसरण करना चाहिए। प्रकृति ने जिन बातों ो लेकर, हमारे शरीर की रचना की है, उन्हीं बातों को लेकर ीवन बिताने में हमारा कल्याण है, उनके विरुद्ध आचरण करने े रोग-शोक, आपद-विपद के सिवा और कुछ नहीं है।

पुस्तक के एक एक लेख में पृथक बातों पर विचार किया ाया है। जीवन की उन सभी बातों को लेकर बताया गया है जेनकी वास्तव में हमें जरूरत है। पुस्तक को आदि से लेकर अंत ाक पढ़ जाने पर पाठकों को कुछ मिलेगा। पढ़ने के बाद, वे यदि किसी गिरे-पड़े आले में पुस्तक को सदा के लिए रख न दें और प्रतिपादित बातों का अपने जीवन में अभ्यास करें, तो उनको बहुत कुछ लाभ हो सकता है।

पुस्तक में योगासनों पर एक परिच्छेद है। इस परिच्छेद को छोड़ कर सभी बातें अपनी नित्य की जानी-समझी हैं। प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी जो बातें बताई गयी हैं, उनका प्रयोग रोज ही मेरे घर में होता है। इन साधनों की भी हमें कोई आवश्यकता न पड़ती और हम बिना उनकी सहायता के सदा स्वस्थ और नीरोग रह सकते, यदि हम शहरों के गंदे स्थानों को छोड़ कर, कहीं नीरोग स्थान में रहते। नागरिक जीवन से अभी तक कुछ ऐसा सम्बन्ध चला आता है जिसके लिए विवश होना

पड़ता है। ऐसी अवस्था में, पुस्तक में प्रतिपादित-साधनों का कभी-कभी आश्रय लेना पड़ता है। इसके सिवा डाक्टरी, वैद्यक और हकीमी—किसी भी प्रकार की अप्राकृतिक चिकित्सा से, शारीरिक और पारिवारिक—दोनों प्रकार के जीवन में छुट्टी मिल गई है!

पुस्तक में योगासन पर लिखा हुआ परिच्छेद मेरा नहीं है, उसके सम्बन्ध में मेरी अधिक जानकारी भी नहीं है। लेकिन इस पुस्तक में योगासनों पर लिखे हुए एक आलोचनात्मक परिच्छेद की आवश्यकता थी। उस आवश्यकता को मेरे मित्र, हिन्दी साहित्य के चिरपरिचित, श्री जगपति जी चतुर्वेदी ने पूरा किया है। योंतो इस पुस्तक में उनका और भी बहुत कुछ है, परंतु यदि उसके लिए मैं उनका आभारी न होऊँ, तो भी श्री चतुर्वेदी जी के इस परिच्छेद के लिए, जिसके द्वारा पुस्तक की एक बड़ी कमी की पूर्ति हुई है, मैं अंतःकरण से अनुगृहीत हूँ। चतुर्वेदी जी का योगी जीवन है और अपनी अनन्य भक्ति के साथ वे नित्य ही आसनों का अभ्यास करते हैं।

विनीत—

केशवकुमार ठाकुर

स्वास्थ्य के प्राकृतिक साधन

१—स्वास्थ्य नष्ट होने के कारण

स्वास्थ्य का जीवन के साथ इतना गहरा सम्बन्ध है कि वह जीवन के साथ आता है और जीवन के साथ ही जाता है। एक नवजात बालक में भी स्वास्थ्य होता है, किशोर वय में भी स्वास्थ्य होता है और वृद्धावस्था में भी स्वास्थ्य होता है। स्वास्थ्य के लिए किसी अवस्था का विवेचन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार अवस्था के साथ-साथ जीवन परिवर्त्तित होता जाता है, स्वास्थ्य के भी रूप और अनुरूप बदलते रहते हैं, किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि वृद्धावस्था में अथवा अमुक अवस्था में स्वास्थ्य नहीं रहता। ऐसी अवस्था में जब स्वास्थ्य का जीवन के साथ यह सम्बन्ध असत्य नहीं है तो फिर उसके प्राप्त करने का क्या अर्थ होता है, यह एक प्रश्न पैदा होता है।

समाज जितना ही शिक्षा और सभ्यता में आगे बढ़ता जाता है, उतना ही वह स्वास्थ्य के लिए दुखी होता जाता है। इसी लिए दिन पर दिन इस प्रकार के लेखों और पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य बढ़ता जाता है, जिनमें स्वास्थ्य प्राप्त करने के साधन तथा

प्रयत्न बताये गये हों। यह देख कर सहज ही यह प्रश्न पैदा होता है कि जो स्वास्थ्य जन्म के साथ ही हमारे जीवन में आता है, उसके प्राप्त करने के साधन कैसे ? स्वास्थ्य प्राप्त करने की समस्या ही कुछ विडम्बनापूर्ण मालूम होती है। संसार में पशु, पत्ती, कीड़े-मकोड़े आदि सभी जीव हैं। इन्हीं जीवों में मनुष्य भी एक जीव है। प्रकृति के निकट मनुष्य में और संसार के अन्यान्य जीवों में कोई अंतर नहीं है। प्रकृति ने मनुष्य-जीवन में जो बातें उत्पन्न की हैं, अन्यान्य सभी जीवों में वे पायी जाती हैं। भूख-प्यास, सुख-दुख, कष्ट-यातना, जीवन-मरण आदि बातें जिस प्रकार मनुष्य में पायी जाती हैं, अन्यान्य जीवों में भी वे उसी रूप और परिमाण में मौजूद हैं। मनुष्य-जीवन में ऐसी कोई बात कमी की अथवा अधिकता की नहीं पायी जाती, जिससे उसके जीवन की परिस्थितियाँ कुछ और ही समझी जाँय। फिर स्वास्थ्य प्राप्त करने की आवश्यकता मनुष्य को क्यों है, जब कि सृष्टि के अन्यान्य जीवों में किसी को नहीं है ? पशु-पक्षियों से लेकर कीड़े-मकोड़ों तक—किसी में भी स्वास्थ्य प्राप्त करने का न तो आन्दोलन होता है और न उसके लिए कुछ प्रयत्न ही किये जाते हैं। तो क्या इसका अर्थ यह है कि वे सभी जीव अस्वस्थ रहते हैं ? सृष्टि के किसी भी जीव को स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए साधनों की आवश्यकता नहीं होती। इसके आधार पर स्वास्थ्य और जीवन के सम्बन्ध की

वैज्ञानिक विवेचना की जाती है, कि स्वास्थ्य जीवन से पृथक कोई वस्तु नहीं है। इसी लिए किसी भी जीव को उसको अलग से प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती। मनुष्य को भी उसको अलग से प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है, किंतु अप्राकृतिक जीवन में पड़ कर मनुष्य अपने जीवन के स्वास्थ्य को नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है, इसीलिए उसको प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था में प्रश्न पैदा होता है कि मनुष्य-जीवन का स्वास्थ्य किस प्रकार नष्ट होता है—उसके नष्ट होने के कारण क्या हैं और वे कब-कैसे पैदा हो जाते हैं ?

जिन्हें स्वास्थ्य की आवश्यकता है और जिनके जीवन का स्वास्थ्य नष्ट हो गया है, उनको स्वास्थ्य प्राप्त करने के साधन और उपाय जानने की आवश्यकता तो है ही, किंतु उससे पहले उनको कुछ जानने की आवश्यकता है और वह यह कि स्वास्थ्य नष्ट होने के कारण क्या हैं, स्वास्थ्य किस प्रकार नष्ट हुआ है। कोई भी चिकित्सक, जब तक किसी रोग के उत्पन्न होने के कारणों को नहीं जान लेता तब तक वह उस रोग की चिकित्सा नहीं कर सकता। और यदि कोई वैद्य, उसके कारणों को बिना जाने, उसको दूर करने का प्रयत्न करता है, तो उससे कुछ लाभ नहीं होता। यही अवस्था स्वास्थ्य के सम्बन्ध में भी है। स्वास्थ्य नष्ट हो जाने पर, स्वास्थ्य प्राप्त करने के साधनों

और उपायों का जानना उतना आवश्यक नहीं है जितना उसके नष्ट होने के कारणों का जानना आवश्यक है।

बाल्यकाल का स्वाभाविक जीवन

जीवन स्वाभाविकता चाहता है। प्रकृति ने उसे जैसा बनाया है वह उसीके अनुरूप चलकर सुन्दर बन सकता है और उसके विरुद्ध परिस्थितियों में रहकर, वह क्षत-विक्षत हो सकता है। लड़कपन में जिनको बिना किसी बंधन के जीवन में आगे बढ़ने का अवसर मिलता है, वे बालक सुन्दर और स्वस्थ बनते हैं और जिन्हें अस्वाभाविकता के बन्धनों में जकड़ जाना पड़ता है, वे सूखने लगते हैं। किसी भी वृक्ष के पौदे को अच्छे स्थान पर उपजाऊ मिट्टी में लगाकर, अनेक बातों का ख्याल रखना पड़ता है। वह खाद और पानी तो चाहता ही है विशेषता यह होती है कि वह किसी विशालकाय, बड़े वृक्ष का आश्रय नहीं चाहता। पौदे के हरे-हरे रहने और फलने-फूलने के लिए यह बहुत आवश्यक होता है। ठीक यही अवस्था मनुष्य के लड़कपन में होती है। शैशवकाल में भय, बन्धन और किसी प्रकार की परवशता बच्चों को स्वस्थ और समर्थ नहीं होने देती।

स्कूलों का शिक्षा-क्रम इसके सम्बन्ध में बहुत अधिक बाधक हुआ है। बच्चे जो स्वतन्त्रता, स्वेच्छाचारिता और स्वाभाविकता चाहते हैं, स्कूलों का जीवन उसका हनन करता है।

आरम्भ में बच्चों को जिन स्कूलों और पाठशालाओं में पढ़ना पड़ता है उनके अध्यापकों की क्रूरता और निरंकुशता बालकों के लिए विष हो जाती है। लड़कपन में बालक, बालिकायें प्यार, स्नेह चाहती हैं और वे चाहती हैं कि उनके विचारों और उनकी मानसिक भावनाओं में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचायी जाय। बालक क्या गलतियाँ करते हैं और कब नहीं करते, हमको वे नहीं देखना चाहिये। वे जो कुछ करते हैं अपनी समझ में अच्छा करते हैं, यही उनकी प्रकृति है, यही उनका प्राकृतिक जीवन है, इसी स्वेच्छाचारिता में रहकर उनका फूल-सा जीवन पनपता है, फूलता है, किन्तु माता-पिता और अध्यापकों की मार-पीट, क्रूरता, भयंकरता और भय, अपमान उनके जीवन के स्वाभाविक विकास को रोक देता है, उनकी स्वाभाविक शक्तियाँ मारी जाती हैं। जिन जातियों के लड़कों को स्वतंत्रता के साथ लड़कपन में रहने को नहीं मिलता वे अपने जीवन में कुम्हलाते हुए, शक्तिहीन, सौन्दर्यहीन, प्रतिभाहीन रहते हैं और जिनकी संतान स्वतंत्रता के साथ, बिना किसी के भय-अपमान के साथ जीवन पाती हैं, वे फूल की भाँति फूलती हैं। स्वतंत्र देशों में लड़कों और लड़कियों की आजादी जितनी बढ़ती जा रही है जिन्हें यह जानने का अवसर मिलता है अथवा मिला है, वे इस बात को जानते हैं और जो जीवन की इन बातों से अपरिचित हैं, वे अपने बच्चों के साथ क्रूरता का व्यवहार करके दिन पर दिन उनसे

घृणा करते जाते हैं, किन्तु स्वतंत्र बालकों को देखकर, उनके हरे-भरे चेहरे, उनके जीवन के विकास और स्वास्थ्य, सौन्दर्य के साथ-साथ उनके साहस पुरुषार्थ को देखकर मोहित होते रहते हैं। इस प्रकार के स्त्री-पुरुष जो बालकों-बालिकाओं की सत्यता और स्वाभाविकता को नष्ट करते हैं, अत्यन्त कलङ्कपूर्ण होते हैं! निर्दयतापूर्ण जीवन में पालन-पोषण पाने वाले बालकों का स्वास्थ्य सदा के लिए नष्ट हो जाता है।

स्वास्थ्य नष्ट होने के और भी कितने ही कारण बाल्यकाल में ही पैदा हो जाते हैं। छोटी अवस्था में, जब बालक बालिकाओं के शरीर-निर्माण का समय होता है, खेलना-कूदना, इच्छानुकूल परिश्रम और उत्पात करना उनके स्वास्थ्य के लिए सहायक होता है। किन्तु माता-पिता इसको अनावश्यक समझकर उन पर शासन करते हैं। लोगों को यह जानने की आवश्यकता है कि बालकों की प्रकृति और बूढ़ों की प्रकृति में बड़ा अन्तर होता है। बालक बुड्ढों के स्वभावों में कभी नहीं रह सकते, और बुड्ढे स्वभावतः बालकों की प्रकृति का अनुकरण नहीं कर सकते

प्रायः यह देखा जाता है कि सुशील बनाने के लिए बच्चों पर इतना अधिक शासन किया जाता है कि वे अपनी स्वाभाविक बातों से वंचित हो जाने के कारण अपने जीवन में बुड्ढे हो जाते हैं, इन बातों का स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बच्चों को मन-माना खेलना, कूदना और समय, अवस्था के अनुसार निरंकुश

रहना उनके स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक है। लड़कपन में इन बातों पर शासन करने से बच्चे अपने स्वास्थ्य से वंचित हो जाते हैं। बालकों पर शासन और अनुचित शासन होने से जो स्वास्थ्य को क्षति पहुँचती है उसकी कमी अच्छा खाना देने से अथवा अन्य सुविधा होने से पूरी नहीं होती। समाज में नित्य ही बात देखी जाती है कि धनी आदमियों के लड़के अच्छा से अच्छा खाने पर भी दुर्बल, स्वास्थ्यहीन और रोगी होते हैं, किन्तु ग़रीबों के लड़के और लड़कियाँ सूखा खाना खाने पर भी स्वस्थ, मोटे-ताज़े और नीरोग होते हैं। इसका कारण क्या है ? शिक्षा न होने के कारण लोग सच्ची बातों को समझने के स्थान पर आडम्बर में पड़ते हैं। ऐसा क्यों होता है, यह बात लोग जानने और समझने की कोशिश नहीं करते। प्रायः देखा जाता है कि अनाथ स्त्रियों के बच्चे स्वास्थ्य और आरोग्यता में उन बालकों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे होते हैं जो सुखी माँ-बाप के बच्चे होते हैं। इसका कारण सिवा इसके और कुछ नहीं कि जो बच्चे जितना ही अधिक स्वतंत्र, निर्भय और निरंकुश जीवन बिताते हैं, वे उतनाही अधिक स्वस्थ और नीरोग होते हैं।

ब्रह्मचर्य

किशोर अवस्था प्राप्त होने पर वीर्य आविर्भूत होता है। शरीर-विज्ञान-विशारदों का कहना है कि वीर्य जन्म के साथ ही

आता है। यहाँ पर उसकी गम्भीर आलोचना न करके उसी अवस्था के सम्बन्ध में विचार करना है जिसमें बालकों के बनने-बिगड़ने का समय होता है। वीर्य का स[illegible]त् रूप बालकों में लगभग चौदह वर्ष की आयु में उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था से लेकर वीर्य की परिपक्व अवस्था तक वीर्य की रक्षा बालकों का ब्रह्मचर्य कहलाता है। यह रक्षा अपने आप नहीं हो जाती। माता-पिता का यह कर्तव्य होता है कि उस समय वे अपनी संतान की रक्षा करें। किन्तु कितने माता-पिता ऐसे हैं जो अपने इस कर्तव्य को पूरा करते हैं? अनेक प्रकार के व्यवहारों और दुराचारों के द्वारा इस अवस्था में वीर्य की हानि होती है (स्वास्थ्य के नष्ट होने का यह दूसरा कारण है।)

इस अवस्था में जो जितने ही आचरणभ्रष्ट होते हैं, वे उतने ही स्वास्थ्यहीन, दुर्बल और रोगी होते हैं और जो जितने ही सदाचारी होते हैं, वे उतने ही स्वस्थ, शक्तिपूर्ण और नीरोग होते हैं। वीर्य पुष्ट होने तक की अवस्था ब्रह्मचर्य की अवस्था कहलाती है। हमारे देश में यह अवस्था चौबीस-पच्चीस वर्ष की अवस्था तक मानी गई है। दूसरे देशों में जल-वायु के अनुसार इस अवस्था में अंतर हो जाता है। ब्रह्मचर्य की अवस्था ही समस्त जीवन की जड़ होती है। अतएव आगे की अवस्था का स्वास्थ्य और आरोग्य बहुत अंशों में इसी वीर्य की रक्षा पर निर्भर है।

परिश्रम और व्यायाम

स्वास्थ्य के लिए शारीरिक परिश्रम अत्यंत आवश्यक है। जो परिश्रम करने के अभ्यासी नहीं हैं अथवा यों कहा जाय कि जो परिश्रम नहीं करते, चाहे वे बालक चाहे युवक और चाहे वे वृद्ध हों, उनका स्वस्थ और नीरोग रहना असम्भव है। यही कारण है कि जो सम्पत्तिशाली परिश्रम नहीं करते, वे सदा के लिए अपने स्वास्थ्य को खो देते हैं। बिना परिश्रम के स्वास्थ्य की रक्षा नहीं हो सकती। अनभिज्ञता के कारण प्रायः अधिकांश स्त्री-पुरुष परिश्रम करना अपने लिए अपमान समझते हैं। यह उनकी बहुत बड़ी मूर्खता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे थोड़े समय के पश्चात् स्वास्थ्य के लिए रोते हैं और पछताते हैं। स्वास्थ्य के नष्ट होने का तीसरा कारण परिश्रम न करना है।

परिश्रम न करने के कारण ही अमीर घरों के लड़के और लड़कियाँ, स्त्री और पुरुष स्वास्थ्य-हीन और रोगी होते हैं। परिश्रम करने के कारण ही गरीब लड़के-लड़कियाँ, स्त्री-पुरुष स्वस्थ, शक्तिशाली और नीरोग होते हैं। अमीर घरों में पालन-पोषण पाने वाली और सुख तथा आमोद-प्रमोद में रहने वाली युवतियाँ अपने युवाकाल में ही बुढ़ापे को प्राप्त हो जाती हैं, किन्तु जो गरीब, मजदूरी करने वाली युवतियाँ दिनभर परिश्रम करती हैं निर्धन और गरीब होनेपर भी, उनके शरीर में स्वास्थ्य और

आरोग्यता होती है। परिश्रम करने वाले स्त्री-पुरुषों के शरीर में बुढ़ापे में भी स्वास्थ्य और पुरुषार्थ रहता है। जीवन का परिश्रम से बहुत बड़ा सम्बन्ध है। व्यायाम परिश्रम का विशद और संस्कृत रूप है। शरीर को स्वस्थ और आरोग्य रखने के लिए परिश्रम और व्यायाम बहुत जरूरी है। परिश्रम न करना स्वास्थ्य नष्ट होने का तीसरा कारण है।

जितने भी रोग हैं सभी शरीर को निर्बल बनाते हैं। जिनको प्रायः कोई न कोई रोग हुआ ही करते हैं अथवा कोई एक ही रोग पीछे पड़ जाता है, उनको स्वास्थ्य से हाथ धो लेना पड़ता है। नीरोग रहना ही स्वास्थ्य है। किसी भी मनुष्य के निर्बल और अस्वस्थ हो जाने का रोग ही एक प्रधान कारण होता है। ऊपर जितने भी कारण दिखाए गये हैं उनके अतिरिक्त रोगों में पड़ जाने पर शरीर दिन पर दिन क्षीण होता जाता है। यद्यपि रोगों के उत्पन्न होने के कारण होते हैं, फिर भी यह ठीक ही है कि स्वस्थ और सुन्दर शरीर रोग के कारण मिट्टी में मिल जाता है।

चिंता-व्यथा

स्वास्थ्य नष्ट होने का अंतिम कारण जीवन की चिंता-व्यथा होती है। सुखी और स्वस्थ रहने के लिए जीवन की शान्ति, प्रसन्नता अत्यंत आवश्यक है। छोटी से छोटी चिंता-व्यथा भी नुष्य को तुरंत अस्वस्थ करने का कारण हो जाती है। जिनके

जीवन में मानसिक चिंता वनी रहती है वे सदा-सर्वदा निर्वल शरीर और स्वास्थ्यहीन होते हैं। चिंता-व्यथा किसी की अवस्था का विचार नहीं करती। वह स्त्री-पुरुषों पर, युवक-युवतियों पर और युवा- वृद्धों पर एकसा प्रभाव करती है।

चिंता-व्यथा अनेक रूप में सामने आती है। कुछ लोग हैं जो अपने जीवन की कठिनाइयों, घर-गृहस्थी की मुसीवतों के कारण रात-दिन चिंता में घुला करते हैं। उनकी चिंता उनके स्वास्थ्य को उसी प्रकार भीतर से खोखला करती रहती है जिस प्रकार किसी पुस्तक को दीमक भीतर ही भीतर खा जाती है।

जिन स्त्री-पुरुषों को, युवकों और युवतियों को प्रेम करने का नशा हो जाता है और जब वे किसी के प्रेम-पाश में वँध जाती हैं तो उनके जीवन की शान्ति, प्रसन्नता नष्ट हो जाती है। यहीं से उनकी चिंता-व्यथा आरंभ हो जाती है। इस प्रकार की वातों में पड़ कर कितने युवक नष्ट-भ्रष्ट होते हैं, यह यहाँ पर वताना अभीष्ट नहीं है। संक्षेप में केवल इतना ही यहाँ पर विवेचन करना है कि किसी भी स्त्री-पुरुप के जीवन का स्वास्थ्य नष्ट होने के लिए इस प्रकार के प्रेम वहुत अधिक वाधक होते हैं, किसी भी युवती और युवक को दुर्वल शरीर, स्वास्थ्यहीन देख कर यह निश्चय हो जाता है कि या तो इसको किसी रोग ने स्वास्थ्य-हीन वनाया है, अथवा प्रेमासक्ति के कारण इसका जीवन छिन्न-भिन्न हो रहा है।

मानसिक चिंतायें विभिन्न प्रकार की होती हैं। वे सभी स्वास्थ्य की शत्रु होती हैं। प्रायः साहित्य-सेवी दुर्बल और स्वास्थ्य हीन होते हैं। उनकी दुर्बलता का कारण अधिक अंशों में मानसिक श्रम और चिंता होती है। इसी प्रकार और भी जितने आदमी मानसिक श्रम करनेवाले तथा मानसिक चिंता रखनेवाले होते हैं, वे सब के सब कृशकाय और स्वास्थ्य-हीन होते हैं। मानसिक श्रम से स्वास्थ्य क्षीण होता है। मानसिक चिंता से स्वास्थ्य नष्ट होता है।

दुराचरण

स्वास्थ्य सदाचार पर निर्भर है। किसी भी अवस्था में, किसी भी समय सदाचार स्वास्थ्य की रक्षा करता है और दुराचरण उसको नष्ट-भ्रष्ट करता है। स्वास्थ्य को सदा के लिए मिटाने में और शारीरिक अवस्था को पतित करने में दुराचरण से बुरा कुछ हो सकता है, इसमें सन्देह है।

स्वास्थ्य नष्ट होने के ऊपर जितने भी कारण बताये गये हैं, वे सभी स्वास्थ्य के कट्टर शत्रु हैं। जिनके जीवन में उपर्युक्त बातों में से कोई एक कारण भी पैदा हो जाता है, उनका स्वास्थ्य-सुख सदा के लिए नष्ट होजाता है। हम जानते हैं कि मनुष्यों में कदाचित् ऐसा कोई न होगा जिसको अपना स्वास्थ्य प्यारा न । सभी चाहते हैं कि हम स्वस्थ हों। जिनका स्वास्थ्य सुरक्षित

है, वे भी स्वास्थ्य को प्यार करते हैं और जिनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, वे तो स्वास्थ्य के लिए इस प्रकार तरसते हैं, जिस प्रकार मछली पानी के लिए। स्वास्थ्य नष्ट होने के पश्चात् लोग फिर स्वास्थ्य को प्राप्त करने का उपाय करते हैं, किन्तु जब तक कोई भी मनुष्य अपने स्वास्थ्य-नाश का वास्तविक कारण नहीं समझता, तब तक उसके लिए फिर स्वास्थ्य प्राप्त करना असंभव है। अतएव जिनको स्वास्थ्य प्यारा है और जिनका स्वास्थ्य एक बार नष्ट हो चुका है, उनके लिए सब से प्रथम अपने स्वास्थ्य के नष्ट होने के कारण को जान लेना अत्यंत आवश्यक है और उसके पश्चात् उसकी पूर्ति करना उचित है। ऐसा करने पर ही स्वास्थ्य की रक्षा हो सकती है और खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त किया जा सकता है। अन्यथा स्वास्थ्य की रक्षा करना खोये हुए स्वास्थ्य को फिर प्राप्त करना मृगतृष्णामात्र है!

२—खोया हुआ स्वास्थ्य

स्वास्थ्य नष्ट हो जाने के कारण क्या हैं, इस विषय पर पिछले लेख में पढ़ कर अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में मनुष्य सावधान हो सकता है। वह इस बात का प्रयत्न करेगा कि भविष्य में उससे कोई ऐसी भूल न हो जिससे उसका स्वास्थ्य नष्ट हो, किन्तु जिनका स्वास्थ्य नष्ट हो चुका है—जो किसी भी कारण से अपना स्वास्थ्य खो चुके हैं, वे फिर अपना स्वास्थ्य किस प्रकार प्राप्त करें, यह जान लेना अत्यंत आवश्यक है। किन प्रयत्नों से खोया हुआ स्वास्थ्य फिर प्राप्त किया जा सकता है, इस पर इस परिच्छेद में विचार करना है।

पूर्व परिच्छेद में बताया जा चुका है कि यदि किसी का स्वास्थ्य नष्ट हो चुका है अथवा स्वास्थ्य गिरता जाता है तो उसको सबसे पहले अपने स्वास्थ्य के गिरने के कारणों को जानना चाहिए। यह बात बहुत आवश्यक है। सभी इस बात को स्वीकार करेंगे कि डाक्टर, वैद्य अथवा हकीम किसी भी रोग की चिकित्सा ठीक-ठीक उसी समय कर सकता है जब वह रोग को भली भाँति पहचान लेगा। रोग का समझना उसके लिए अत्यंत आवश्यक है, इसके पश्चात् वह औषधि का प्रयत्न करता है। इसी आधार पर यह निश्चित है कि जो डाक्टर वैद्य अथवा हकीम अपने अनुभव में रोग के कारण को समझने में जितना ही निपुण होगा

इतना ही उसकी चिकित्सा लाभकर साबित होगी, और जो जितना ही अनुभवहीन होगा, उसकी औषधियाँ उतनी ही असफल प्रमाणित होंगी। यही बात हमको खोये हुए स्वास्थ्य को प्राप्त करने के सम्बन्ध में समझनी चाहिए।

यदि हमारा स्वास्थ्य नष्ट हो गया है अथवा नष्ट हो रहा है, तो किसी चिकित्सक के यहाँ जाने के पूर्व हमको स्वयं उसका निर्णय करना चाहिए। हम वैद्यों और डाक्टरों से बहुत घबराते हैं। हमें अपने जीवन का बहुत बड़ा अनुभव है जिसके आधार पर बिना किसी संकोच के हम कह सकते हैं कि उनको स्वास्थ्य-विज्ञान का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। वे प्रधान-प्रधान रोगों पर चिकित्सा-शास्त्र के प्रयोगों को काम में लाते हुए जिस प्रकार का काम करते हैं, उसको देख कर दुख के साथ उनकी उपमा तेली के बैल के साथ दी जा सकती है। यद्यपि स्वास्थ्य, चिकित्सा-शास्त्र का ही विषय है किन्तु उनको इसके सम्बन्ध में व्यापक बातों का कुछ ज्ञान नहीं होता। बात इतनी ही नहीं है, किसी भी अस्वस्थ स्त्री-पुरुष को पाकर, यदि कोई प्रधान् रोग नहीं है तो वे उसको सहायता पहुँचाने के स्थान पर अपनी अर्थ-प्राप्ति का एक साधन पा लेते हैं। इस लिए यदि किसी को अपनी स्वास्थ्य-हीनता में किसी चिकित्सक से सहायता लेनी ही पड़े तो कुछ समझ बूझ कर अथवा अपनी या किसी अन्य की ज़िम्मेदारी पर सहायता लेनी चाहिए। इससे भी अच्छा मार्ग एक और है। स्वास्थ्य-

सम्बन्धी पुस्तकें जितनी भी देख सकें और जितनी भी प्राप्त हो सकें, उनको पढ़ कर उनसे लाभ उठाना चाहिए।

स्वास्थ्य का साधारण ज्ञान

प्रत्येक मनुष्य को स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातों का साधारण ज्ञान तो होना ही चाहिये। स्वास्थ्य बिगड़ने अथवा किसी रोग के उत्पन्न होने पर उसके प्रतिकार का प्रयत्न जीवन में स्वभावतः आरंभ हो जाता है। सृष्टि में जितने भी जीव हैं, सभी के जीवन में प्रकृति का यह रहस्य सदा-सर्वदा देखा जाता है, किन्तु मानव-जाति उन सभी बातों से शून्य है और दिन पर दिन शून्य होती जाती है। किसी भी पशु को जब कोई बीमारी हो जाती है, तो उसी दिन से, उसी समय से वह खाना-पीना छोड़ देता है। किन्तु हम लोग बीमार होने पर भी अपना खाना-पीना जारी रखते हैं। इस पर थोड़ा सा प्रकाश डालना यहाँ पर अत्यंत आवश्यक है। हमारा शरीर ठीक कल के समान है। प्रत्येक कल के पुर्जे सदा सफाई चाहते हैं। उस कल के प्रयोग करने वाले समय-समय पर उसको साफ़ करते रहते हैं। इस पर जब कभी उसमें मल अधिक इकट्ठा हो जाता है तो वह कल ठीक ठीक काम नहीं देता। उस समय काम लेना बंद कर दिया जाता है और जितनी जल्दी हो सकता है उसकी सफ़ाई कराई जाती है। सफाई के पश्चात् वह कल फिर उसी स्फूर्ति के साथ काम

करना आरम्भ कर देती है जिस स्फूर्ति से वह पहले काम देती थी। ठीक यही अवस्था हमारे शरीर की है।

हममें जो काम करने की शक्ति है, वह हमारे शरीर को भोजनों से प्राप्त होती है। शरीर को शक्ति पहुँचाने के लिए जो हम भोजन करते हैं और पानी पीते हैं, उसका सत तो हमारे शरीर में जाकर रक्त और वीर्य बनता है और खाने-पीने के पदार्थों में जो विकृत अंश होता है, वह मल के रूप में शरीर से बराबर बाहर निकलता रहता है। इस विकृत अंश—मल को बाहर निकालने के लिए हमारे शरीर में चार प्रधान मार्ग हैं, फेफड़े, त्वचा, गुदा और मूत्रेन्द्रिय।

संसार में जितने भी चिकित्सा-शास्त्र, नये और पुराने आज तक माने जाते हैं, सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि शरीर में जितने भी रोग उत्पन्न होते हैं, उन सब का प्रधान और एक-मात्र कारण शरीर के भीतर विकृत अंश—मल का रुकना है। पेट जब साफ नहीं होता तो मल शरीर से बाहर होने के बजाय, पेट में ही सड़ने लगता है। उसकी सड़न उत्ताप पैदा करती है। पेट की यह सड़न अपने स्थान से उठकर फेफड़ों में पहुँचती है और फेफड़ों को रुग्ण बनाती है। हमारी जीवन-शक्ति फेफड़ों के स्वास्थ्य और बलवान होने पर निर्भर है। मल के सड़ने से हमारा शरीर-यंत्र अपना काम करने में असमर्थ होता है, उस समय की अवस्था का नाम रोग है। रोग की अवस्था में—जैसा किसी

भी यंत्र के लिए आवश्यक होता है—शरीर-यंत्र की सफ़ाई अत्यंत शीघ्रता के साथ अनिवार्य रूप में आवश्यक हो जाती है। इस सफ़ाई के लिए सब से आवश्यक यह होता है कि हम भोजन करना रोक दें। इससे यह होगा कि नया मल हमारे शरीर में नहीं बढ़ने पायेगा। शरीर में जो मल रुक जाता है, उसी को निकालने के लिए प्रकृति की ओर से बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। रोग प्रकृति का उपचार है। रोग ही प्रकृति की चिकित्सा है, ये रोग उस विकृत अंश—मलको, मलकी सड़न को निकालने के लिए पैदा होते हैं। यदि हम नया मल—विकृत अंश पेट में न पैदा करें, तो फिर हमको अपने किसी रोग की चिकित्सा करने की आवश्यकता नहीं होती। प्रकृति ने हमारे शरीर के भीतर ही ऐसी व्यवस्था की है कि हम रुग्ण होकर उस मल को बाहर निकालने का काम आरम्भ कर देते हैं और जब तक शरीर से उसको पूर्ण रूप में बाहर निकालकर शरीर को शुद्ध और परिष्कृत नहीं कर लेते तब तक हमारे रोग अपना उपचार जारी रखते हैं। हमारे शरीर में यह क्रिया उपवास रह कर होनी चाहिए। प्रकृति के रहस्य को सृष्टि के अन्यान्य जीवों में देखिए, कोई भी पशु जब बीमार होजाता है, तो तुरंत वह अपना खाना-पीना बंद करदेता है। यही अवस्था पक्षियों, जंगली जानवरों की भी होती है। ऐसा करने पर उनके शरीर का विकार दूर होजाता है, और वे नीरोग होजाते हैं। नीरोग होने पर वे फिर अपना खाना-पीना आरंभ कर देते हैं।

मनुष्य को छोड़कर, संसार के सभी जीवों में प्रकृति का यह नियम काम करता है, इसीलिए तो पक्षियों, पशुओं और जंगली जानवरों के कहीं पर न तो धर्मार्थ औषधालय ही खुले होते हैं और न उनके लिए सरकारी अस्पताल ही !

किंतु आज मनुष्य जाति की अवस्था क्या है ? जितने भी शहर हैं, सभी डाक्टरों की दूकानों, हकीमों और वैद्यों के औषधालयों से भरे पड़े हैं। एक दो नहीं, प्रत्येक शहर में अनेक धर्मार्थ औषधालय, दातव्य चिकित्सालय और अस्पताल होते हैं, जहाँ नित्य ही रोगियों के मेले लगते हैं ! किन्तु फिर भी मानव-समाज का एक-एक बच्चा, एक-एक स्त्री, एक-एक पुरुष रोगी ! बीमार !! इसका कारण क्या है, यह जानने के लिए अब अधिक बताने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम स्वस्थ रहना चाहते हैं, तो स्वास्थ्य-सम्बन्धी इन साधारण बातों का जानना बहुत आवश्यक है। डाक्टर-वैद्यों और हकीमों के भरोसे न तो आज तक मनुष्य-जाति स्वस्थ तथा सुखी रही है और न भविष्य में ही रह सकेगी, यह निश्चय है। यदि स्वास्थ्य-विषयक साधारण बातों का भी हमें ज्ञान हो जाय तो हम अपने जीवन में स्वास्थ्य-सुख के लिए दुखी नहीं रह सकते !

लोगों का भ्रम

जिनका स्वास्थ्य नष्ट हो गया है, उनमें से ही बहुत से लोग मिलते हैं जो चाहते हैं कि हम फिर से नीरोग हो जाँय। जिनके

शरीर सूख गये हैं, रक्त और मांस की कमी हो गई है और इसके कारण उनके शरीर का स्वास्थ्य और सौन्दर्य लोप हो गया है इस प्रकार के स्त्री-पुरुष और विशेष कर युवती और युवक अपने स्वास्थ्य-सौन्दर्य के लिए व्याकुल होते हैं। वे चाहते हैं कि हमें कोई कुछ बता दे तो फिर हम जैसे थे वैसे बन जाँय। दुख की बात तो यह है कि इस प्रकार की बातें करने वाले शिक्षित स्त्री-पुरुष, युवती, और युवक होते हैं। शिक्षा का ठीक-ठीक उपयोग न होने के कारण वे संसार में सब कुछ जानते हैं, जरूरत पड़ने पर वेदों और शास्त्रों से कम की बातें ही नहीं करते, किन्तु वे अपने शरीर की साधारण स्वास्थ्य सम्बन्धी बातें भी नहीं जानते, जिन पर उनके जीवन का, शरीर का स्वास्थ्य और सुख निर्भर है।

इसी प्रकार के आदमियों को ठगने के लिए समाचार पत्रों में, पत्र-पत्रिकाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की दवाओं के विज्ञापन निकला करते हैं। उनकी लम्बी-चौड़ी बातें पढ़ कर लोगों को सहजही विश्वास हो जाता है। आवश्यकता बुरी चीज होती है। इस प्रकार लोगों को बड़ी हानि उठानी पड़ती है और उनको लाभ कुछ भी नहीं होता। इस तरह अनेक बार हानि उठाने पर भी उनकी यह इच्छा बनी रहती है कि हमें कोई कुछ बता दे। कितनी बड़ी मूर्खता है! जङ्गली जड़ी-बूटियों के सम्बन्ध में भी लोग बड़ा विश्वास करते हैं। यद्यपि हमारे कहने का यह अर्थ

नहीं है कि जङ्गली जड़ी-बूटियाँ व्यर्थ होती हैं, फिर भी लोगों को यह जानना बहुत आवश्यक है कि न तो जंगल की जड़ी बूटियों से किसी को शरीर का अक्षय बल-पुरुषार्थ प्राप्त हुआ है और न उनसे हो ही सकता है, केवल इस प्रकार की बातों को लेकर एक आडम्बर फैलाया जाता है और साधारण लोगों को ठगा जाता है।

शरीर का स्वास्थ्य, सौन्दर्य, बल, पुरुषार्थ बढ़ाने के लिए शारीरिक बातों का ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है। हम शरीर को कैसे स्वस्थ बना सकते हैं, किस प्रकार वह सुन्दर और सुगठित हो सकता है, यह वर्षों जानने, अनुभव करने और प्रयत्न के साथ उन बातों का सम्पादन करने की आवश्यकता है जिनसे शरीर में स्वास्थ्य और पुरुषार्थ भरता है। इसके सिवा किसी के आशीर्वाद, किसी देवता की पूजा, औषधियों के प्रयोग और जड़ी बूटियों के प्रताप से स्वास्थ्य और पुरुषार्थ नहीं मिला करता।

यदि हमारे शरीर को किसी रोग ने पकड़ लिया है और उससे पिण्ड नहीं छूटता, तो हमें सब से पहले उस रोग को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए और उस रोग के दूर करने का तब तक प्रयत्न करना चाहिए जब तक वह पूर्ण रूप से चला न जाय। ऊपर बताया गया है कि रोग कोई अलग की वस्तु नहीं है। वह वास्तव में प्रकृति की अवस्था है जिसके द्वारा हमारे

शरीर की सफ़ाई होती है। हाँ, इस समय इस बात का ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि जिन कारणों से हमारे शरीर में मल और विकृत पदार्थ एकत्रित हुए हैं, इस बीच में और न आने पावें। इसी प्रकार जितने भी रोग होते हैं, सब के पैदा होने का कारण होता है। उन कारणों को जानना और उनको रोक देना रोग को दूर करने का सबसे सुन्दर मार्ग है। यहाँ पर इस को अधिक स्पष्ट करने के लिए उदाहरण देकर हम बताये देते हैं। मान लिया कि किसी स्त्री को अथवा युवा पत्नी को प्रदर की बीमारी है। उसकी चिकित्सा होना तो आवश्यक है ही। किंतु चिकित्सा होती क्या है? यह निश्चय है कि समाज अंध-विश्वास से हट कर विज्ञान के प्रकाश में जा रहा है। उस प्रकाश में भ्रमात्मक बातों का नाश होगा, अंधविश्वास उठता जायगा। आज शरीर-शास्त्र के बड़े-बड़े पण्डितों ने जो शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य-विज्ञान की रचना की है, उस रचना ने पुराने ढङ्ग के वैद्यों, डाक्टरों और हकीमों को बेकार साबित किया है। चिकित्सा-व्यवसाय में सब के सब कितने असफल हो रहे हैं यह सब यहाँ पर बताने का समय और स्थान नहीं है। फिर भी सर्वसाधारण को यह जान लेना आवश्यक है कि चिकित्सा का यह आडम्बर अब संसार में अधिक दिन न चलेगा। होगा यह कि लोगों में शिक्षा बढ़ेगी, उस शिक्षा के प्रभाव से लोग अपने जीवन के सभी

ज्ञान प्राप्त करेंगे, रोग क्यों होते हैं, उनके होने के कारण क्या हैं और वे स्वभावतः किस प्रकार दूर हो सकते हैं, यह जानकर उनका प्राकृतिक उपचार करेंगे।

हम बता रहे थे कि मानों किसी स्त्री को प्रदर की बीमारी है, किसी डाक्टर, वैद्य को दिखाइए, और दवा ले आइए। दवा करते रहिए और बीमारी के ज्वार-भाटे का दृश्य देखते रहिए, परन्तु कभी बीमारी से पिंड नहीं छूट सकता,इस प्रकार के उपचार पर हमें तो बिल्कुल ही विश्वास नहीं। यहाँ पर जो कुछ लिखा जा रहा है, वह अपने अनेक अनुभवों के बाद लिखा जा रहा है। यह बीमारी स्त्रियों के लिए बड़ी भयानक है। हमारा तो अनुभव है कि जिसको यह बीमारी हुई, उसका अच्छा होना बहुत कठिन हो जाता है। कदाचित् यह बीमारी अच्छी होती ही नहीं। अच्छे न होने के दो प्रधान कारण हैं। एक तो यह कि यह बीमारी वास्तव में बहुत भयानक है, ईश्वर न करे किसी स्त्री को यह बीमारी हो। उसके पश्चात् इसके अच्छे न होने का कारण है उचित चिकित्सा और उपचार की कमी। यह बीमारी आज-कल समाज में खूब फैली हुई है, कदाचित् ही कोई स्त्री होगी जिसको इसने छोड़ा हो। इस बीमारी के उत्पन्न होने का समय प्रायः स्त्री की युवावस्था ही होती है। जब लड़कियों का कम अवस्था में विवाह कर दिया जाता है, तो असमय पति-सहवास इसके अनेक कारणों में एक कारण हो जाता है। शरीर की

निर्बलता और विषय का आधिक्य, अधिक रोना-कलपना, मानसिक व्यथा आदि आदि अनेक कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है। यह रोग स्त्री-वीर्य से सम्बन्ध रखता है। स्त्रियों का वीर्य (रज) अधिक परिपुष्ट होने के पूर्व ही जब पति-सहवास को प्राप्त होता है तो वह निर्बल होकर पतला पड़ जाता है, इसका फल यह होता है कि वह अपनी प्रकृति को खोकर, रात-दिन अपने आप पतित हुआ करता है! जिस स्त्री अथवा युवती को यह आरंभ होता है, उसको यह रोग चार-छः महीने में ही दुर्बल शरीर और पीले रङ्ग का बना देता है, इसकी औषधियाँ अनेक हैं, किंतु पहली औषधि है कि जिस स्त्री को यह रोग हो, उसको पति से पृथक् (मायके में) रखकर, यथासम्भव सावधानी के साथ उसको ब्रह्मचारिणीसी बनाकर रखा जाय। और इसके पश्चात् उसका अन्य आवश्यक उपचार किया जाय। न तो इस प्रकार का प्रबन्ध होता है और न वह रोग स्त्री का पीछा छोड़ता है। इस रोग के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें हैं जो यहाँ अधिक नहीं लिखी जा सकतीं। बताना केवल यह था कि वैद्यों और डाक्टरों के प्रयत्न इस प्रकार के रोगों में न तो सफल होते हैं और न सफल होने का कारण ही रखते हैं।

जिस प्रकार की बीमारी स्त्रियों के लिए प्रदर की होती है, उसी प्रकार की पुरुषों में और विशेषकर, युवकों में प्रमेह की ... है, दोनों बीमारियां बिल्कुल एक-सी हैं। दोनों के एक ही

कारण हैं और दोनों के एक ही परिणाम हैं। यह प्रमेह की बीमारी आज-कल नवयुवकों में और विशेष कर स्कूल के विद्यार्थियों में खूब पैदा हो रही है। जिन नवयुवकों को यह बीमारी हुई, वे अपनी जिन्दगी के सारे सुखों से हाथ धो लेते हैं, बीमारी पैदा हो जाने पर न तो फिर यह अच्छी ही होती है और न इसके अच्छे होने के लिए कुछ उचित उपाय ही किया जाता है। प्रमेह की बीमारी वीर्य की निर्बलता है जो चरित्रहीनता के कारण, युवावस्था में वीर्य के खराब होने से पैदा होती है। इस प्रकार की जितनी भी बीमारियाँ हैं वे वैद्यों के चूरण खाने और डाक्टरों की शीशियाँ पीने से कभी भी दूर नहीं होतीं, इनके दूर करने के लिए डाक्टर और वैद्य उतने योग्य नहीं होते, जितने योग्य रोगी स्वयम् होते हैं। इसका कारण यह है कि बिना कारणों को दूर किये कोई भी रोग न तो अच्छा हुआ है और न अच्छा होगा। कारण क्या हैं, इसको रोगी ही ठीक ठीक समझ सकता है। हाँ उसको इतना समझने की आवश्यकता होती है कि किन किन कारणों को पाकर, अमुक-अमुक बीमारियाँ पैदा होती हैं, इस प्रकार का कुछ आधार पाने पर रोगी सचाई के साथ अपनी अवस्था का विचार करे तो वह अपनी दशा को, बीमारी के कारण को भली भाँति समझ सकता है, और उस रोग का सब से मुख्य और सुन्दर उपाय यह है कि वह उन कारणों को सचाई के साथ छोड़ दे।

प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य अपने बुरे अभ्यासों को छोड़ने में समर्थ नहीं होता। वह छोड़ना चाहता है परन्तु उसकी वे आदतें उसका पीछा नहीं छोड़तीं। ऐसी अवस्था में कभी भी रोग नहीं दूर हो सकता। इसलिए अपने बुरे अभ्यासों को छोड़ने के लिए सब से अच्छा उपाय यह है कि वह अपने निकटतम मित्र, स्नेही अथवा अन्य किसी अपने को, जिसको वह उचित समझे अपनी सारी कथायें, निर्लज्जतापूर्वक बतादे और उन अभ्यासों को छुड़ाने का काम उसको सौंप दे। जिसको यह काम सौंपा जाय उसको उचित है कि वह निर्दयता के साथ, शासन के साथ उसका प्रबंध करें। उसके अभ्यास छूटने अथवा न छूटने की बात को वह भलीभाँति समझे। उन अभ्यासों के छूट जाने की पहचान यही हो सकती है कि उसका यह रोग अच्छा होने लगेगा। रोग के छूटने के साथ-साथ, शरीर की सभी स्वास्थ्य सम्बन्धी बातें बदलने लगती हैं और यह रोगी स्वस्थ, सुन्दर बनने लगता है। जब इस प्रकार का परिवर्तन शरीर में दिखाई देने लगें, तब समझना चाहिए, रोगी ने अपनी उन बुरी आदतों को छोड़ दिया है। रोग दूर करने का यह प्रतिकार कुछ समय बाद अपना प्रभाव लाता है किंतु किसी भी रोग के दूर करने का यह प्राकृतिक, वैज्ञानिक नियम है जो सहज ही किया जा सकता है और रोग सदा के लिए पिण्ड छोड़ देता है। प्रत्येक रोग में दो बातों का ध्यान रखने की आवश्यकता है,

रोग के कारणों को दूर करना और स्वास्थ्य लाभ करने के समय तक संयम तथा व्यवस्था के साथ जीवन बिताना। यह संयम और व्यवस्था केवल आचार-विचार के सम्बन्ध में होनी चाहिये।

मानसिक श्रम और चिंता

मानसिक श्रम और मानसिक व्यथा दो प्रतिकूल बातें हैं। दोनों से ही स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। मानसिक श्रम विचार-शक्ति का व्यायाम है जिसके द्वारा विचार-शक्ति बलवान होती है, यद्यपि मानसिक श्रम करने वालों का स्वास्थ्य निर्बल हो जाता है। इसके लिए जो लोग मानसिक श्रम अधिक करते हों, उनको चाहिए, कि वे उस प्रकार के कुछ उपचारों को काम में लायें जिनसे उनके स्वास्थ्य को सहायता पहुँचे। इस प्रकार के उपचारों में पहली बात यह है कि पुष्टिकारक भोजन करना, स्वास्थ्य बढ़ाने वाली चीजों को खाने के काम में लाना, जैसे दूध-घृत, फल, मेवा आदि। दूसरा उपचार यह है कि दैनिक कुछ न कुछ समय मनोरंजन में व्यतीत किया जाय। इन दोनों बातों का जितना हो उपयोग किया जायगा, उतना ही स्वास्थ्य को लाभ पहुँचेगा।

मानसिक व्यथा स्वास्थ्य की शत्रु है। जिसको मानसिक व्यथा होती है चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष, चाहे वह युवती हो

और चाहे युवक थोड़े दिनों में ही उसका शरीर, उसका स्वास्थ्य और सौन्दर्य मिट्टी में मिल जाता है। इस व्यथा का कुछ भी उपाय नहीं, सिवा इसके कि जिन बातों से यह व्यथा उत्पन्न होती है, उनको भुला दिया जाय, जिन कारणों से मानसिक व्यथा पैदा हुई हो, उनको बुरा समझ कर परित्याग किया जाय। यद्यपि यह बात कठिन है किन्तु जिनको स्वास्थ्य से प्रेम है, वे उन कारणों को भुला सकते हैं और अपने आपको सुखी तथा सन्तुष्ट बनाने का प्रयत्न कर सकते हैं।

कुछ मानसिक चिन्तायें कर्त्तव्य के नाम पर होती हैं। जब *मनुष्य किसी बात को पूरा करना अपना कर्त्तव्य समझता है,* किन्तु पूरा नहीं कर पाता अथवा अनेक प्रकार की कठिनाइयों में पड़ जाता है, उस समय वह घबराता है, ऊबता है और भयानक मानसिक चिन्ताओं में पड़ कर न जाने क्या-क्या सोचा करता है। ऐसी अवस्था में स्वास्थ्य बहुत शीघ्र खराब होता है और जितनीही अधिक मानसिक चिन्ता होती जाती है, उतना ही उसका स्वास्थ्य खराब और पतित होता जाता है। इस प्रकार की परिस्थितियों में चाहिए कि मनुष्य ज्ञान से काम ले। चिन्ता और मानसिक व्यथा मूर्खता है और प्रयत्न मनुष्य की बुद्धिमत्ता है। चाहे जैसा भीषण समय आ पड़े, चाहे जितनी कठिनाइयों में फँस जाना पड़े, एक वीर की हैसियत से अपनी कठिनाइयों पर विजय पाने के लिए प्रयत्न करना चाहिये। यह तो एक वीरात्मा का कार्य है किन्तु

मानसिक व्यथा और मानसिक चिन्ता का अनुभव करना मनुष्य की मूर्खता और क़ायरता है!

जीवन की प्रसन्नता स्वास्थ्य की प्रवर्त्तक है और चिन्ता-व्यथा स्वास्थ्य की नाशक है। जिन बातों से हमारा स्वास्थ्य बढ़ता है वही हमारे जीवन का धर्म है,जिन बातों से हमारे स्वास्थ्य का क्षय होता है, वही हमारे लिए अधर्म है। यदि हम अपने जीवन में केवल इन दो बातों का स्मरण रखें, तो न हमसे कभी अधर्म हो सकता है और न हमारा स्वास्थ्य कभी नष्ट हो सकता है। और इन्हीं बातों के आधार पर हम पुनः अपने खोये हुए स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकते हैं!

३—स्वास्थ्य और सुख

हमें अपने जीवन में प्रकृति से जो तत्व प्राप्त हुए हैं, उनमें एक स्वास्थ्य और सुख भी है। इस पर हमारा अधिकार है, हमी उसका सदुपयोग और दुरुपयोग कर सकते हैं। ईश्वर ने हमें उसको प्रदान करके, हमें इस बात का अधिकार भी दे दिया है कि यदि हम चाहें, तो उसकी रक्षा करके सदा-सर्वदा सुखोपभोग कर सकते हैं और यदि भूल करें तो उसका दुरुपयोग करके पछता सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति सुख चाहता है, ग़रीब लोग सुख चाहते हैं, अमीर लोग सुख चाहते हैं, छोटे बच्चे सुख चाहते हैं और युवकों से लेकर बूढ़ों तक सब के जी में सुख की लालसा होती है। जहाँ तक जीवन का सम्बन्ध है, सुख की लालसा और अभिलाषा का ही प्रश्न है। परन्तु इस सुख की अभिलाषा रखने वालों में कितने लोग हैं जो उस सुख का उपभोग करते हैं? यह एक दूसरा प्रश्न हो जाता है, कारण यह है कि सुख तो कोई दूसरी चीज़ है, जो न तो रुपए पैसे पर अवलम्बित है और न किसी जाति विशेष की अपेक्षा करता है। वास्तव में जीवन का सुख तो जीवन के स्वास्थ्य और सौंदर्य के रूप में होता है। यदि स्वास्थ्य और सुख के सम्बन्ध का निर्णय करना पड़े तो यह कहना

होगा कि स्वास्थ्य और सुख कोई भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं। स्वास्थ्य उसका साकार रूप है और सुख उसका निराकार रूप! इसके सिवा स्वास्थ्य और सुख का कोई दूसरा सम्बन्ध निश्चित नहीं हो सकता!

जीवन के बहुत उद्देश्य होते हैं और वे भिन्न-भिन्न रूपों में होते हैं। संसार जितना ही भिन्न है, उद्देश्यों में उतनी ही विभिन्नता है। संसार जितना रंग-विरंगा है, उद्देश्यों में उतनी ही प्रतिकूलता है, किन्तु उन समस्त उद्देश्यों को उन विभिन्न और प्रतिकूल आदर्शों को संक्षेप में यदि रहने की आवश्यकता पड़े और यह प्रश्न हो कि जीवन का उद्देश्य और आदर्श क्या है तो कहना होगा कि स्वास्थ्य और सुख! जहाँ स्वास्थ्य नहीं है, वहाँ सुख नहीं है, जहाँ सुख नहीं है, वहाँ जीवन नहीं है!! जहाँ स्वास्थ्य और सुख-पूर्ण जीवन है, वही सच्चा जीवन है और वही स्वर्ग है! जहाँ स्वास्थ्य नहीं है, सुख नहीं है, वहीं कष्ट है और वहीं संसार का नरक है!

जीवन में स्वास्थ्य का स्थान

जीवन का सब से बड़ा उद्देश्य सुख और स्वास्थ्य पर है। यह स्वास्थ्य क्या है, यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है, शिक्षित और अशिक्षित, निर्धन और धनी, नीच और ऊँच राजा और प्रजा—सभी स्वास्थ्य को जानते हैं। (स्वास्थ्य के निकट

सभी का समान स्थान है और यह स्वास्थ्य उसी को प्राप्त होता है, जो उसका वास्तव में अधिकारी है। जीवन का सारा महत्व उसी पर अवलम्बित है, इसीलिए संसार के स्वामी, हमारे जीवन के नियंता ईश्वर ने उसको एक अद्भुत रूप दिया है। उसमें अनोखापन यह है कि स्वास्थ्य रुपए से ख़रीदा नहीं जा सकता। अधिकारियों को रिश्वत में नहीं मिल सकता, बलवान और ज़बरदस्त उसको छीन नहीं सकते, चोर और डाकू उसकी चोरी और डकैती नहीं कर सकते। यदि स्वास्थ्य में यह अनोखापन न होता तो वह आज ग़रीबों के पास न होता! निर्धन मजदूरों के जीवन उस स्वास्थ्य से बिलकुल सूने होते!! संसार की अन्य विभूतियों की भाँति स्वास्थ्य भी बाजारों में बिकता होता और सम्पत्तिशालियों, पैसेवालों के हाथों का खिलौना होता!!

स्वास्थ्य क्या है, यह सब कोई जानता है। जो नहीं जानते वे भी आगे चलकर जानने लगते हैं। जो नहीं जानते उसका कारण है। पैसे का महत्व पैसेवाला नहीं जानता, शक्ति का महत्व शक्तिशाली नहीं जानता। धन का महत्व निर्धन और बल का महत्व निर्बल जानता है! इसलिए कि वह उसके बिना अपनी असमर्थता को एक एक क्षण में अनुभव करता है। इसी प्रकार स्वास्थ्य का महत्व वे जानते हैं जो स्वास्थ्य को खो चुकते हैं, और दूसरों के स्वास्थ्य और सौन्दर्य को देखकर अपने हृदय

में एक अव्यक्त पीड़ा का अनुभव करते हैं। स्वास्थ्य के महत्व को वे जानते हैं!!

सृष्टि चित्रकार के बनाए और सँवारे, सुन्दर सलोने बालक और युवक अपने स्वास्थ्य और सौंदर्य के महत्व को नहीं जानते; फूल के समान प्रकृति की लाड़िली-दुलारी प्यारी बालिकाएँ और बालाएँ स्वास्थ्य और सौंदर्य का मूल्य नहीं जानतीं! इसका महत्व और मूल्य इनको उस समय मालूम होता है जब स्वास्थ्य और सौंदर्य उनके जीवन से विदा हो जाता है।

इस स्वास्थ्य और सौंदर्य का सम्बन्ध हमारे जीवन के आरम्भ से अन्त तक है। जीवन के साथ वह आता है और जीवन के साथ ही वह जाता है। हमारे जीवन से उसके खो जाने का कारण हमारे जीवन की असुविधाएँ हैं, इनको संक्षेप में यहाँ पर बता देना आवश्यक है।

आचरण और संयम

समाज के जीवन में जितनी भी अस्वाभाविकता दिखाई देती है, उसका कारण शहरों का जीवन है। उसने समाज के जीवन में बड़ी असुविधाएँ पैदा कर दी हैं। समाज से संयम का भावही नष्ट हो गया है और उसका प्राकृतिक रूप ही पलट गया है। आचार विचार नष्ट होने का मूल कारण शहरों के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। भोजनों की दुर्व्यवस्था ने तो हमें न जाने कहाँ से कहाँ लेजाकर डाला है। हमारे जीवन के लिए जिस

वायु की आवश्यकता है, उसका नाम लेना और सोचना ही पाप हो गया है। अस्वाभाविक भोजन, दूषित वायु और पतित आचरणों ने हमारे जीवन को किस प्रकार क्लेशपूर्ण और रोग-शोकपूर्ण बना डाला है, उसका सजीव चित्र नेत्र खोलकर प्रत्येक घड़ी समाज में देखा जा सकता है। जीवन को नष्ट करने और समाज को पतित बनाने में जिनका हाथ है, उनमें ऊपर बताई हुई बातें मुख्य हैं। यदि इन तीनों बातों की असुविधा और उनका व्यतिक्रम हम अपने जीवन से दूर कर सकें, तो फिर यह निश्चित है कि हमें स्वास्थ्य और सुख के लिए रोना न पड़ेगा।

स्वास्थ्य के सम्बन्ध में चाहे जितने लेख लिखे जाँय, चाहे जितनी पुस्तकों की रचनाएँ हों और चाहे जितने भाषण दिए जाँय, समाज का उनसे कोई उपकार नहीं हो सकता जब तक कि समाज के जीवन का व्यावहारिक रूप स्वास्थ्य प्राप्त करने के अनुकूल नहीं होता। मानव समाज ने पिछली शताब्दियों में स्वास्थ्य की बहुत बड़ी क्षति उठाई है। इस समय उसका झुकाव जिस प्रकार स्वास्थ्यपूर्ण जीवन की ओर हो रहा है, उससे पता चलता है कि भविष्य में समाज का जीवन फिर एक बार मार्ग पर दिखाई देगा, किन्तु समाज के इस युग-परिवर्तन में बहुत देर है। स्वास्थ्य को नष्ट-भ्रष्ट करनेवाली बातों के प्रतिकूल जितना ही अधिक आन्दोलन हो, उतना ही शीघ्र समाज को स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है।

४—स्वास्थ्य, शिक्षा और शहरों का जीवन

स्वास्थ्य का जीवन के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध है। स्वास्थ्य स्वर्गीय सम्पत्ति है जिसको प्रत्येक जीव अपने जीवन के साथ लेकर आता है। संसार की उन सम्पत्तियों में से नहीं है जिसे कुछ सौभाग्यशाली व्यक्ति ही प्राप्त कर सकते हैं। वह ऐसी नैसर्गिक विभूति है जिसका प्रकाश रूपवान और रूपहीन, प्रतिभावान और प्रतिभाहीन, नेत्रवान और नेत्रहीन एवम् सम्पत्तिवान और सम्पत्तिहीन में एक-सा होता है। किसी मनुष्य के ऐश्वर्य से उसका सम्बन्ध नहीं है, अवस्था के अनुसार स्वास्थ्य होना ही चाहिए।

एक ओर स्वास्थ्य के सम्बन्ध में इस निर्णय पर जाना पड़ता है और दूसरी ओर समाज स्वास्थ्य के नाम पर बहुत अनाथ हो रहा है। जिन बालक और बालिकाओं के शरीर कोमल किन्तु अक्षय स्वास्थ्य से भरे होने चाहिए, वे पीले और दुर्बलकाय हो रहे हैं। जिन युवकों और युवतियों के जीवन में यौवन का मद होना चाहिए, उनके शुष्क शरीर और स्फूर्ति-हीन मुख-मण्डल दिखाई देते हैं। समाज में जिन स्त्री और पुरुषों में शक्ति और पुरुषार्थ होना चाहिए उनके शरीरों की भलमनसी स्वच्छ और मूल्यवान वस्त्रों के द्वारा सुरक्षित है। यह समाज का जीवन है!

समाज की यह अवस्था है! अब प्रश्न यह है कि इसका कारण क्या है? समाज की यह दुर्बलता क्यों है?

वर्त्तमान शिक्षा का स्वास्थ्य पर प्रभाव

वर्त्तमान दिनों में समाज का ध्यान स्वास्थ्य की ओर आकर्षित हुआ है। संसार का जो देश और राष्ट्र जितना समर्थ है, उतना ही इस स्वास्थ्य के सम्बन्ध में विचार करने में संलग्न हो रहा है। पत्र और पत्रिकाओं में स्वास्थ्य के ऊपर लेख लिखे जाते हैं। प्रत्येक भाषा में स्वास्थ्य पर अनेक ग्रन्थ हैं और अधिक ग्रन्थ प्रस्तुत किए जाने का उद्योग हो रहा है। स्कूलों और कालेजों में स्वास्थ्य की रक्षा करने वाली बातों और उसकी वृद्धि करनेवाले जीवन को श्रेय देने के लिए अनेक व्यवस्थाएँ की जा रही हैं। बालक और बालिकाएँ, युवती और युवक स्कूलों और कालेजों में स्वास्थ्य के लिएँ सचेत किए जा रहे हैं। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में समाज के जीवन में यह परिवर्तन हुआ है, इस परिवर्तन की अवस्था और प्रयत्नशीलता को देखकर जब हम समाज की अवस्था पर विचार करते हैं तो उसकी अवस्था उस हौज की सी मालूम होती है जिसमें एक ओर से जल भरने की व्यवस्था अपना काम करती रहती है और हौज के नीचे के छिद्रों द्वारा उसका जल बराबर निकलता रहता है। कुछ दिनों के पूर्व समाज उन दोनों को अतिवाहित कर चुका है जिनमें उसका स्वास्थ्य

केवल नष्ट हुआ है। वर्तमान दिनों में उसकी रक्षा के लिए जो उद्योग किया जा रहा है उसमें कुछ सन्तोष होना चाहिए, परन्तु समाज जिस प्रकार का जीवन बिता रहा है उसमें वह स्वास्थ्य का सुख देख सकता है, यह आशा करना अनभिज्ञता के सिवा और कुछ नहीं है। स्वास्थ्य के दो प्रधान शत्रु हो रहे हैं, शिक्षा की वर्त्तमान प्रणाली और शहरों का जीवन! एक तो शिक्षा की वर्तमान प्रणाली ने ही समाज के स्वास्थ्य को नष्ट भ्रष्ट कर-डाला है और उस पर भी शहरों के जीवन ने तो उसको मिट्टी में ही मिलाकर छोड़ा है।

शिक्षा की जो वर्तमान प्रणाली है उसमें एक बालक अपने जीवन के ठीक आधे वर्ष शिक्षा प्राप्त करने में ही खो देता है। यदि वर्तमान समय में मनुष्य-जीवन की औसत अवस्था पच्चास वर्ष मानली जाय तो किसी भी विद्यार्थी को वर्तमान स्कूल और कालेजों की पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने में अपनी अवस्था के कम से कम पच्चीस वर्ष खोने पड़ते हैं। इन पच्चीस वर्षों में जो उसको शिक्षा प्राप्त होती है उसमें लिखने-पढ़ने को छोड़कर अपने जीवन की वह और कोई भी तैयारी नहीं कर सकता! यह शिक्षा-काल इतना अधिक लम्बा हो जाता है कि इसमें पड़कर विद्यार्थी अपने जीवन की उस समय की अनेक आवश्यकताओं से हाथ धो बैठता है। इसके साथ ही शिक्षा प्राप्त करने का ऐसा ढंग रक्खा गया है जिनमें बालक और बालिकाएँ प्रारम्भ से

लेकर अन्त तक स्वास्थ्य का खूब नाश करती हैं। एक अवस्था के दो बालकों में से एक को पढ़ने में लगा दिया जाय और दूसरे को शिक्षा से पृथक रक्खा जाय, पढ़ने वाले बालक को घी, दूध तथा अन्यान्य मधुर पदार्थ खाने को दिए जांय और दूसरे को बिलकुल साधारण भोजन दिया जाय, कुछ दिनों के पश्चात् देखा जाय तो दोनों बालकों में बहुत कुछ अन्तर मिलेगा।

एक आदमी के तीन लड़के थे। दो लड़कों को वह अपनी निर्धनता के कारण पढ़ा न सका किन्तु तीसरा लड़का जब पढ़ने योग्य हुआ तो उसकी आर्थिक अवस्था कुछ अच्छी थी। लोगों के कहने से उसने अपने तीसरे लड़के को पढ़ने भेज दिया। हिन्दी की मिडिल परीक्षा तक पढ़ाकर उसने उसका पढ़ना भी रोक दिया। तीनों ही लड़के जब युवा हुए तब तीसरा लड़का पहले दोनों की अपेक्षा बहुत निर्बल था। पहले के दोनों लड़के जितना डील डौल में बढ़ सके, तीसरा उतना न बढ़ सका और शरीर में तो वह बहुत ही निर्बल था। उन बालकों के माता-पिता का कहना है कि हमने जितना तीसरे लड़के के लिए खाने-पीने में खर्च किया है, उतना दोनों को मिलाकर भी खर्च नहीं किया।

शहरों के जीवन में स्वास्थ्य का अभाव

जो आदमी शिक्षा और नागरिक जीवन से दूर रहे हैं वे स्वास्थ्य और शारीरिक पुरुषार्थ में उनके शिक्षित लड़कों

की अपेक्षा कितना अधिक अन्तर रहा है, यह बात तो प्रत्येक व्यक्ति रात-दिन अपनी आँखों के सामने देखता है। किन्तु कहीं कहीं पर तो यह अन्तर अत्यंत भयानक हो जाता है। देहातों में रहनेवाले स्त्री पुरुषों का बहुत शुष्क जीवन होता है, किन्तु शहरों के स्त्री-पुरुषों की अपेक्षा वे उतना ही अधिक शक्तिशाली और क्षमतावान होते हैं जितना स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष। देहातों के ही रहनेवाले साधारण शिक्षित पण्डितों और मुन्शियों की अपेक्षा अशिक्षित अधिक स्वस्थ, शक्तिशाली और बलवान होते हैं, यद्यपि वे अशिक्षित और परम कृषक तथा श्रमजीवी अत्यधिक निर्धन होते हैं एवम् जैसे तैसे पेट भर सूखी रोटी जुटा सकते हैं।

जिन देहातों में स्कूल नहीं हैं और उनका स्कूलों की शिक्षा से सम्बन्ध नहीं हुआ, वे देहात उन गाँवों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ, शूरवीर होते हैं। यह प्रभाव केवल हमारे देश-भारतवर्ष में ही नहीं हुआ है, अन्यान्य देशों में भी बराबर पाया जाता है। हमारे देश में जब स्कूलों के खुलने का प्रबन्ध न हुआ था, और स्कूल कालेज नहीं थे, उस समय के स्त्री-पुरुषों में जो शक्ति स्वास्थ्य और पुरुषार्थ होता था, आज उसके लिए कहानियाँ कही जाती हैं। आगे चलकर—भविष्य में, सम्भव है, नवीन सन्तति के लिए ये कथाएँ विश्वासहीन प्रमाणित हों!

पेशावर, बिलोचिस्तान शिक्षा में बहुत पीछे है। वहाँ के रहने वाले शरीर में कितने हट्टे-कट्टे और बलवान होते हैं, यह सभी

लोग जानते हैं। जिनको पेशावर और बिलोचिस्तान जाने का अवसर नहीं मिला है, उन्होंने समय समय पर अनेक प्रकार के व्यवसाय के लिए, अपने प्रान्त में आनेवाले आग़ा लोगों को देखा होगा। वे प्रायः कपड़े का व्यवसाय करते हैं, वे स्कूल और कालेजों में पढ़ते नहीं हैं। पश्तो उनकी भाषा है, उसमें वह बहुत साधारण लिखना-पढ़ना जानते हैं, इस प्रकार का पढ़ना-लिखना थोड़ा सा भी ध्यान देने से एक वर्ष में ही जाना जा सकता है। इनके शरीरों में स्वास्थ्य होता है, वे शक्तिशाली होते हैं और अधिक से अधिक नीरोग पाए जाते हैं।

इस प्रकार की बातों को लेकर जितनी ही इसके सम्बन्ध में छानबीन की जाती है, उतनी ही अधिक यह बात प्रमाणित होती है कि शिक्षा और उसकी वर्त्तमान प्रणाली स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। ऊपर की पंक्तियों में जितने उद्धरण दिये गए हैं, उन सब में शिक्षा की वर्त्तमान प्रणाली के कारण, एक स्वस्थ और दूसरा अस्वस्थ, एक नीरोग और दूसरा रोगी, एक शक्तिशाली और दूसरा शक्ति-हीन हो गया है। शिक्षा की इस प्रणाली का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है और उसकी कौन-कौन सी अवस्थाएँ हमारे जीवन को निर्बल स्वास्थ्य-हीन कर डालती हैं, इस पर यहाँ और भी स्पष्ट रूप से कुछ प्रकाश डालने की आवश्यकता है। विद्यार्थी जीवन की जो बातें बालक और बालिकाओं के जीवन में स्वास्थ्य

के विरुद्ध वातावरण उत्पन्न करती हैं, उनमें से कुछ मुख्य इस प्रकार हैं—

१—बाल्य जीवन पूर्ण रूप से उन्नत होनेके लिए स्वच्छन्दता निर्भयता चाहता है। देहातों में जो स्कूल होते हैं उनमें पढ़ाने का ढंग अत्यन्त निर्दयता-पूर्ण होता है। छोटे-छोटे बच्चों के जीवन में उन स्कूलों का पहला प्रभाव यह पड़ता है कि उनमें चिन्ता और भय प्रवेश कर जाता है। उनकी अत्यन्त कोमल प्रकृति पर इसका बहुत बुरा प्रभाव यह पड़ता है और उसी समय से उनकी उन्नति की स्वाधीनता में बाधा पड़ने लगती है।

२—स्कूलों और पाठशालाओं में विद्यार्थियों को जिस प्रकार पढ़ना लिखना पड़ता है, उसका उनकी पाचन क्रिया में बहुत दूषित प्रभाव पड़ता है और पढ़ने-लिखने वाले लड़कों की पाचन शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है। आगे चलकर उनके जीवन पर यह प्रभाव पड़ता है कि उनकी क्षुधा दिन पर दिन कम होती जाती है। पाचन शक्ति के निर्बल होने से चाहे जितना मधुर भोजन क्यों न मिले, उसमें न तो उनको स्वाद जान पड़ता है और न कुछ अच्छा ही लगता है। माता-पिता को अपने सन्तान की इन बातों का ज्ञान नहीं होता, माता केवल इतना जानती है कि हमारा लड़का पढ़ता है, इसलिए इसको अच्छा अच्छा खाने को मिलना चाहिए। फलतः अपने घर

की स्थिति के अनुसार वे घी, दूध तथा मिष्टान्न का भी उसके लिए प्रबन्ध करती हैं, किन्तु इसका कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। पाचन शक्ति के निर्बल होने से उनके शरीर सूखने आरम्भ हो जाते हैं। माता-पिता समझते हैं, पढ़ाई में परिश्रम अधिक पड़ता है इसलिए हमारा लड़का दुबला होता जाता है।

३—पढ़ने वाले लड़कों का पारिश्रमिक कार्यों से सम्बन्ध छूट जाता है, इसके दो कारण होते हैं—कुछ तो विद्यार्थी उचित जानकारी न मिलने के कारण समझने लगते हैं कि काम करना छोटे आदमियों का काम है। इसलिए वे स्वयं कामों से जी चुराने लगते हैं और माता-पिता भी इसके सम्बन्ध में बड़ी असावधानी से काम लेते हैं। इस प्रकार की बातों का अधिक ज्ञान न होने के कारण, प्यार और दुलार के कारण माता-पिता पढ़ने वाले बच्चों को कामों से बचाए रखने की चेष्टा करते हैं। परिश्रम सदा स्वास्थ्य के बढ़ाने में सहायक होता है और यह भी जान लेने की बात है कि व्यायाम परिश्रम वाले कार्यों का एक सुसंस्कृत रूप है। परिश्रम वाले कार्यों से पाचन शक्ति उद्दीप्त होती है और क्षुधा बढ़ती है, क्षुधा तीव्र होने से साधारण से साधारण भोजन भी अधिक खाया जाता है जिससे रस, रक्त और वीर्य बनता है। यही स्वास्थ्य है, यही शक्ति है और यही वास्तव में शरीर का सौन्दर्य है।

विश्राम-हीन जीवन और स्वास्थ्य

शहरों के जीवन का स्वास्थ्य पर दूसरा प्रहार है। इनमें बसने वाले प्रायः शिक्षित और अर्द्ध शिक्षित ही रहते हैं। ऐसी अवस्था में शहरों में स्वास्थ्य कैसा हो सकता है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। उनके व्यावहारिक जीवन का सर्वसाधारण पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ नहीं कहना है। नागरिक जीवन में एक ऐसी विशेषता है जो स्वभावतः स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है और आश्चर्य की बात यह है कि उसके हानिकारक रूप की ओर समाज का ध्यान कभी आकर्षित नहीं होता। सभी लोगों ने अनेक ग्रन्थों में पढ़ा होगा और हमने भी पढ़ा है, "अपने समय को कभी व्यर्थ मत जाने दो, प्रत्येक समय कुछ न कुछ काम करते रहो। दिन रात के चौबीस घन्टों के टुकड़े कर डालो और अपने काम के अनुसार उन्हें कार्य-क्रम के रूप में बदल दो। इस बात का प्रयत्न करो कि तुम्हारे जीवन का एक मिनट भी कभी बेकार न जाय।" इन पंक्तियों के साथ हमें बताया गया है कि इस प्रकार काम करने से ही प्रत्येक मनुष्य एक दिन महान आत्मा बन सकता है। संसार में जितने भी महान पुरुष बन सके हैं, इसी प्रकार काम करने से बन सके हैं। यह कार्य-संलग्नता अपने उद्देश्य की सिद्धि में बहुत उपादेय है, इसमें कोई सन्देह

नहीं है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि अधिक काम करके और अपने समय को व्यर्थ न खोकर ही संसार के महात्मा महान् आत्मा हो गए हैं, किन्तु स्वास्थ्य के लिए यह जीवन हानिकारक ही नहीं, अत्यंत विप के समान है। शहरों का यह जीवन, जिसमें उनके निवासियों को एक घड़ी की छुट्टी नहीं है, स्वास्थ्य को सदा सर्वदा के लिए मिटाने वाला है और शहरों का यही एक जीवन है जो सब से अधिक हानिकारक है। इन्हीं बातों के कारण भारत के समाज-संस्थापकों ने अधिक विस्तृत नगर-निर्माण की अपेक्षा समाज का हित ग्राम-निर्माण में ही समझा था। इन विस्तृत नगरों का निर्माण पश्चिम संसार की कला है। ये विशाल नगर जीवन की अन्यान्य बातों के लिए जो कुछ हानिकारक हैं, सो तो हैं ही, स्वास्थ्य के लिए वे कितने हानि-कारक हैं, इस बात को पश्चिम के ही अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है। शहरों के अविश्रान्त जीवन को हानिकर स्वीकार करते हुए मि० एच० एच० हल्बर्ट ने अपने एक लेख में लिखा है—

दूसरे की अधीनता में काम करनेवाले पशु को ही मनुष्य कहा जाता है किन्तु वास्तव में मनुष्य एक यंत्र मात्र है जो कुछ भोजन के बदले में काम किया करता है! शरीर विज्ञान का प्रत्येक नियम हमें बतलाता है कि जीवन को विश्राम की आवश्यकता है। किन्तु (शहरों का जीवन विश्राम का शत्रु है!)

इसमें कोई सन्देह नहीं कि शहरों का जीवन बहुत अशान्त हो गया है। प्रातःकाल से लेकर रात के सोने के समय तक उनके निवासियों का जीवन किसी न किसी कार्य में संलग्न रहता है। कदाचित शहरों के जीवन से शान्ति-विश्राम नाम ही लोप हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति, स्त्री और पुरुष अपने आप को विश्राम पहुँचाकर नष्ट नहीं करना चाहता। नगरों में जितने भी व्यवसाय किए जाते हैं और जीवन-निर्वाह के लिए जितने भी साधन काम में आते हैं, वे सभी आये दिन संसार में अत्यन्त अशान्त हो गए हैं। रोटी का प्रश्न दिन पर दिन भयानक होता जाता है, प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में इतना संलग्न रहने पर बड़ी कठिनाई के साथ अपने परिवार के पालन-पोषण में समर्थ हो सकता है, कदाचित, इसीलिए शहरों का जीवन इतना विश्राम-हीन हो गया है और आगे चलकर इससे भी अधिक हो जायगा ऐसा जान पड़ता है।

मानव-जीवन में अशान्ति

मानव-जीवन के इस रूप को देखते हुए प्रश्न यह होता है कि यह जीवन क्या इतना दुरूह है ? क्या हमारा जीवन इतना विश्राम-हीन और अशान्त है कि जिसमें हम रात-दिन के चौबीस घंटों में मर खप कर यदि काम न करें तो हमारा निर्वाह कठिन हो जाय। इस विश्राम-हीन जीवन में पड़कर, हम इस अवस्था

को पहुँचे हैं कि अपने सम्बन्धियों की दुःख-पूर्ण कथाएँ सुनते हैं, परन्तु उनके पास जाने और उनके साथ सहानुभूति प्रकट करने का हमारे पास अवसर नहीं है ! हम अपने संख्यातीत कार्यों में इतना बँधे हुए हैं कि जब हमारे मिलने के लिए दूर प्रान्त से हमारा कोई शुभचिंतक मित्र, सम्बन्धी हमारे पास आता है तो हमें विवश होकर यह कह देना पड़ता है—"क्षमा कीजिएगा, इस समय तो मेरे पास समय नहीं, आप फिर किसी समय आने का कष्ट कर सकते हैं !" एक अँग्रेज़ी लेख में किसी सम्पादक के संबन्ध में लिखा गया था कि उसको इतना काम करना पड़ता था कि जिससे उसको कभी किसी से मिलने मिलाने और बातें करने का अवकाश ही न मिलता था । वह अपनी अवस्था से इतना विवश हो गया था कि प्रगाढ़ मित्रों और माननीय सम्बन्धियों के आने पर भी वह इस प्रकार व्यवहार करता हुआ सामने आता, मानों वह जानता-पहचानता ही नहीं है और तुरन्त ही कह दिया करता था, 'विवश हूँ,मेरे पास समय नहीं है ।' कई वर्षों के पश्चात् उसको उन्माद रोग होगया और उस रोग में ही उसकी मृत्यु हुई । यह जीवन कितना व्यथापूर्ण है ? क्या हमारा जीवन इसी प्रकार के कार्य्यों के बोझ से लदा हुआ है ? इस वात का उत्तर देते हुए एक अँग्रेज दार्शनिक ने लिखा है—

Man was not so much born to sorrow as he was to work.

काम करता हुआ जिस प्रकार मनुष्य अपने जीवन को विपाद-पूर्ण बना लेता है, वास्तव में वह इस जीवन को लेकर पैदा नहीं किया गया।

कितनी सुन्दर आलोचना है ! कितने मनोहर शब्द हैं ! जिसने हमें उत्पन्न किया है, उसने इस संसार में इस प्रकार की सुविधाएँ दी हैं, जिनके द्वारा हम सहज ही—थोड़ी सी सावधानी के साथ काम लेने पर अपनी समस्त जरूरतें पूरी कर सकते हैं। यही वास्तव में जीवन है और यही जीवन का प्राकृतिक रूप है जिसमें हमको सच्चा स्वास्थ्य,सुख और सौंदर्य प्राप्त हो सकता है।

यह धारणा बिलकुल निराधार है कि अनवरत परिश्रम करके ही हम कर्मशील और बड़े आदमी हो सकते हैं। अविश्रांत जीवन में न केवल स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है किन्तु अत्यंत कोमल मस्तिष्क-शक्ति और जीवन की प्रतिभा मारी जाती है। जिसके जीवन का ओज और व्यक्तित्व नाश हो जाता है, उसके जीवन में मनुष्यत्व और पशुत्व में कोई अंतर नहीं रह जाता। इसीलिए, इस प्रकार के मनुष्यों की मि० एच० एच० एलवर्ट ने उन पशुओं में गणना की है जिनको दूसरे के अधिकार में, दूसरे की इच्छा के अनुसार, काम करना पड़ता है।

स्वास्थ्य के लिए शान्ति और विश्राम

स्वास्थ्य के लिए परिश्रम हानिकारक नहीं, अत्यंत आवश्यक है। किंतु हमारे जीवन को विश्राम की भी आवश्यकता है। शान्ति

और विश्राम के न मिलने से अन्यान्य जीवों की अपेक्षा मनुष्य के जीवन में जो विशेषता है, उस विशेषता का नष्ट हो जाना अत्यंत स्वाभाविक है। नागरिक जीवन से स्वास्थ्य-सौंदर्य और शक्ति के उड़ जाने के यही कारण हैं!

मानव-जीवन को एक्कों के घोड़े बना डालने से काम न चलेगा। शिक्षा की वर्त्तमान प्रणाली और नागरिक जीवन ने समाज के स्त्री-पुरुषों को भीरु, कायर और रोगी बना डाला है। इन रोगियों से कभी न तो समाज का कल्याण हुआ है और न होने की आशा ही है। अफ़ग़ानिस्तान से एक अफ़ग़ानी आता है, बी० ए० और एम० ए० की डिगरियाँ रखनेवाले पचासों को पीट कर चला जाता है और हम लोग कोट-पतलून पहने हुए केवल पुलिस दफ्तर का रास्ता ही ढूंढ़ते रहते हैं। यदि हम अपने जीवन का स्वास्थ्य, पुरुषार्थ खो रहे हैं तो हमको समझ लेना चाहिए कि हमारी प्राप्त की हुई कालेज की डिगरियाँ, आँखों के चश्मे, हाथों में बंधी हुई सुन्दर सुनहली घड़ियाँ और कोट के जेबों में लगे हुए फ़ाउन्टेनपेन हमारा कुछ साथ न दे सकेंगे। संसार की सत्ता और शक्ति निर्बलों की गप्पों में कभी नहीं रही। संसार के प्रत्येक देश का शासन शक्तिशालियों, पुरुषार्थियों के हाथों में सदा से चला आया है।

शक्ति, शिक्षा की अपेक्षा नहीं करती।

भारत में आज शिवाजी का नाम कौन नहीं जानता। उस

के पिता मुसलमान बादशाह के यहाँ एक साधारण सरदार की जगह पर नौकरी करते थे। शिवाजी को घर पर ही लिखने-पढ़ने का साधारण अभ्यास कराया गया। किन्तु जब वह बड़ा हुआ तो उसमें कुछ और ही गुण पाए गए: उसने मुसलमान बादशाहों के विरुद्ध सोचने और षड्यंत्र करने आरम्भ कर दिए और कुछ आदमियों को मिला कर उसने अपना एक छोटा-सा गिरोह बना लिया। उसके बाद उसने बड़ी योग्यता और प्रतिभा के साथ अपनी शक्ति का संचय किया और मुगल बादशाहों से खूब लड़ाइयां लड़ीं। स्थान-स्थान पर उसकी विजय हुई और मुगल बादशाहों ने शिवाजी को एक बादशाह मन्जूर किया। शिवा जी ने मुसलिम बादशाहों के हाथों से बहुत सा राज्य छीन कर अपने आप को बादशाह घोषित किया। यदि वह कुछ दिनों तक और जीवित रहा होता तो भारत का साम्राज्य आज हिन्दुओं के हाथों में होता।

महाराणा प्रताप की भी यही अवस्था थी। प्रताप में जो पुरुषार्थ था, अपने देश और समाज के प्रति जो स्वाभिमान था वह आज किसके लिए आदर्श नहीं है? प्रताप की वीर-गाथा और प्रताप का आज उनके दुश्मन भी गान करते हैं। यहाँ पर कुछ अधिक बताने की आवश्यकता नहीं है।

प्रताप के बल-वीर्य को विकृत करने वाले न स्कूल-कालेज थे और न शहरों का जीवन था। शिक्षा का एक व्यावहारिक ज्ञान

था, जिसके द्वारा वे अपने धर्म-अधर्म का निर्णय करते थे और उस निश्चय के आधार पर जीवन का पथ तैयार करते थे।

हिन्दू राजाओं में सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का नाम आज तक आदर के साथ लिया जाता है। जिसने इतिहास पढ़ा है और जो चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में जानते हैं उनको बताने की जरूरत नहीं है कि चन्द्रगुप्त ने जिस माता के गर्भ में जन्म लिया था उसका कुछ अस्तित्व नहीं था। अपने बाल्य-काल में वह एक साधारण गृहस्थ के लड़कों की भाँति था। लेकिन उसमें जो स्वाभाविक प्रतिभा थी, व्यक्तिगत स्वाभिमान था, और लाखों करोड़ों पर शासन करने का उसमें जो शासन का भाव था, उसके इन स्वाभाविक गुणों के नष्ट करने के लिए विरोधी बातों का उसके जीवन में आक्रमण न हुआ था। इसीलिए वह एक साधारण घर में जन्म लेकर ऊँचे उठा और अपने प्रयत्न, बुद्धिचातुर्य तथा राजनीतिक कौशल से भारत का एक माननीय सम्राट हुआ।

इस प्रकार के एक दो नहीं, अनेक उदाहरण हिन्दू-इतिहासों में ही नहीं, संसार की सभी जातियों में मौजूद हैं। अकबर बादशाह की शिक्षा-दीक्षा को कौन नहीं जानता। इन राजाओं और बादशाहों की इन बातों का अध्ययन करके इस नतीजे पर जाना पड़ता है कि कदाचित् राजनीतिक चातुर्य और शासन प्रधान

होने के गुण आज-कल की डिगरीधारी शिक्षा से बिलकुल अलग होते हैं।

सभी लोग इस बात को जानते हैं कि अकबर पढ़ा-लिखा न था लेकिन अकबर का शासन सभी मुसलमान बादशाहों से अच्छा था। उसकी लोक-प्रियता के गुण ने ही उसको बादशाही दर्जे तक पहुँचाया था।

जिस उपयोगिता के कारण यहाँ पर कुछ महान आत्माओं के नाम बताए जा रहे हैं, उस नाते मुसलमान बादशाहों में मुहम्मदशाह का नाम बड़े आदर के साथ लिया जा सकता है। अत्यन्त साधारण घर में उसका जन्म हुआ था, इसी कारण वह मुस्लिम सेना में एक सिपाही होकर भर्ती हुआ था।

किसी रईस और ताल्लुकेदार का लड़का यदि पढ़ लिख कर बैरिस्टर बने तो उसकी प्रतिभा और योग्यता की बड़ी प्रशंसा नहीं की जा सकती। लेकिन यदि कोई दीन-दरिद्र के घर में जन्म लेकर केवल अपने पुरुषार्थ से ऊँचे से ऊँचे पद को प्राप्त करे तो वह सर्वथा प्रशंसा का अधिकारी है। मुहम्मदशाह को इसी प्रकार का यश प्राप्त हुआ है। उसमें शासन का बल था, राज्य करने की योग्यता थी, उसका यह फल और उसकी यह योग्यता, समय और अवसर पाकर आगे बढ़ी और जीवन के रूप बदलते, बदलते उसने मुहम्मदशाहके हाथों में शाही हुकूमत सौंपी।

क्लाइव आदि के अनेक ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं जहाँ साधारण शिक्षा वाले लोगों ने अपनी वीरता की बदौलत राज्य स्थापित किया है। इसी प्रकार विश्वविजयी नैपोलियन, अमेरिका का मस्तक ऊँचा करने वाले जार्ज वाशिङ्गटन आदि पराक्रमी योधा भी हो गए हैं जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि जिस आत्म बल, वीर्य बल और पौरुष बल के द्वारा राज्य स्थापित किए जा सकते हैं, पद दलित राष्ट्रों का उद्धार किया जा सकता है और गुलामी की शृङ्खला में जकड़े हुए देश आज़ाद किए जा सकते हैं, वह आत्मबल, वीर्यबल और पौरुष बल स्कूलों, कालेजों की इमारतों के भीतर भस्मीभूत किया जाता है !!

अभी कुछ समय पहले की बात है, कालेज और युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों के सामने महात्मा गांधी वर्तमान शिक्षा, अंग्रेजी शिक्षा के दुष्परिणामों को लेकर बड़ी वेदना के साथ कोस रहे थे। उपस्थित विद्यार्थियों ने कहा—

जिस शिक्षा ने लोकमान्य तिलक जैसे नेता और महात्मा गांधी जैसे महापुरुष उत्पन्न किए हैं, उसको आप निन्दा कैसे करते हैं ?

महात्मा जी ने इसका जवाब देते हुए कहा—यदि इस शिक्षा ने उनके जीवन में प्रवेश न किया होता तो वे और भी बड़े नेता और महापुरुष होते।

महात्मा जी ने यह भी बताया कि महात्मा कबीर को अपने

जीवन में जो महान नेतृत्व प्राप्त हुआ था, वह हमारे लिए सोचने की बात है।

किसी भी देश और समाज का उद्धार रोग-शोक पूर्ण शिक्षितों के बल पर नहीं हुआ। जब जिस देश का उद्धार हुआ है, तब उस देश के साहसी, पुरुषार्थी और पराक्रमी संतानों के बल पर हुआ है। जो स्वास्थ्य हमारे जीवन में वह शक्ति उत्पन्न करता है, जिससे देश और समाज के जीवन में युगान्तर उपस्थित होता है उसका संचय करना ही हमारे जीवन की सफलता है।

५—हम स्वस्थ कैसे बन सकते हैं ?

प्रत्येक पुरुष स्वस्थ बनने की इच्छा रखता है, प्रत्येक स्त्री स्वास्थ्य प्राप्त करने की अभिलाषा रखती है किन्तु स्वास्थ्य नहीं प्राप्त होता। ऐसी दशा में तो दो बातें जान पड़ती हैं, या तो हम स्वास्थ्य प्राप्त करना नहीं जानते अथवा स्वास्थ्य प्राप्त करने की चीज़ ही नहीं है। दुखी और दरिद्र यदि स्वास्थ्य को तरसें तब तो कोई अधिक आश्चर्य की बात नहीं है, वृद्ध और अधिक अवस्था के स्त्री-पुरुष यदि स्वास्थ्य की मृग-तृष्णा का अनुभव करें तो भी अधिक विस्मय की बात नहीं है। किंतु जब युवा स्त्री-पुरुषों का जीवन स्वास्थ्य के लिए तरसता है, संसार का धनिक समाज केवल स्वास्थ्य का सपना देखता है, तब तो स्वास्थ्य की ओर विस्मय के साथ देखना पड़ता है।

स्वास्थ्य भाग्य से नहीं मिलता ?

जो स्वस्थ बनना चाहते हैं, जिनको स्वास्थ्य प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा है, उनको सबसे पहले यह जान लेने की आवश्यकता है कि स्वास्थ्य किसी को सौभाग्य से प्राप्त नहीं होता और न वह कहीं रुपयों के द्वारा ख़रीदा जा सकता है। किसी स्वस्थ स्त्री-पुरुष को देखकर यह सोचने की आवश्यकता नहीं है कि उसके सौभाग्य ने उसे स्वास्थ्य प्रदान किया है। भाग्य

न तो किसी का स्वास्थ्य छीनता है और न वह किसी को देता ही है। जिनको स्वास्थ्य प्राप्त करने की कुछ भी इच्छा है उनको अपने मकान और कमरे में यह लिखकर टाँगना चाहिए कि स्वास्थ्य जीवन का इतना सरल और साधारण पदार्थ है जिसको संसार का प्रत्येक दीन-दुर्बल सहज ही प्राप्त कर सकता है, किंतु वही स्वास्थ्य जीवन का इतना अलभ्य पदार्थ भी है कि जिसके लिए धनिक, ज़मीदार, ताल्लुकेदार, सम्पत्तिशाली और राजा, महाराजा जीवन भर तरसते हैं और प्राप्त नहीं कर सकते।

स्वास्थ्य के दो रूप होते हैं। उसका पहला रूप प्रत्येक स्त्री पुरुष में, वालक, वालिका में समय और अवस्था के अनुसार अपने आप उत्पन्न होता है। उसका दूसरा रूप वह है जिसके लिए प्रयत्न करना पड़ता है, अथवा यों कहा जाय कि उस प्राकृतिक सौंदर्य को कुछ प्रयत्न और चेष्टा के द्वारा अधिक से अधिक समय के लिए समुन्नत और सुरक्षित बनाया जाता है। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में साधारण रूप में यही कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है, बिना प्रयत्न के स्वास्थ्य नहीं प्राप्त होता और बिना इच्छा अभिलाषा के यह प्रयत्न नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह होता है कि स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए सब से पहले हमारे हृदय में इच्छा होनी चाहिए।

यदि हम स्वस्थ बनने की इच्छा रखते हैं और स्वस्थ नहीं हो पाते तो हमें यह समझ लेना चाहिए कि स्वास्थ्य प्राप्त करने की वास्तव में हमारी इच्छा नहीं है। यदि सचमुच हम स्वास्थ्य चाहते हैं तो उसके सम्बन्ध में तनिक भी निराश होने के पूर्व हमको अपने अन्तः करण की अवस्था का विवेचन कर लेना चाहिए। इस बात का विश्वास रखना चाहिए कि यदि हमारी इच्छा है तो हमको उससे वंचित रखने के लिए किसी में शक्ति नहीं है। जब किसी आदमी की इच्छा किसी ओर बलवती हो जाती है तो उसको फिर किसी का न तो भय रह जाता है और न किसी प्रकार की उसकी अनभिज्ञता ही उसका विरोध करती है। यदि वास्तव में हमारी इच्छा हो तो हम एक निर्धन से अधिक से अधिक सम्पत्तिशाली हो सकते हैं, दुर्बल और रोगी से पूर्ण स्वस्थ और शक्तिशाली हो सकते हैं, अत्यन्त मूर्ख से प्रसिद्ध परिडत बन सकते हैं। इतिहास और जीवन चरित्र इन बातों के सैकड़ों, सहस्रों प्रमाण रखते हैं। किसी को इस पर अविश्वास करने की आवश्यकता नहीं है। यदि वास्तव में स्वस्थ बनने की हमारी अभिलाषा है तो स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए न जाने कितने रहस्य हमें अपने आप मालूम होते रहेंगे और जितनी ही हमारी इच्छा-शक्ति उधर झुकती जायगी, उतनीही अधिक हमको सफलता मिलती जायगी।

स्वास्थ्य का अवस्था पर प्रभाव

प्रायः ऐसा होता है कि अपने जीवन में एक बार स्वास्थ्य खोकर अथवा कुछ अधिक आयु के हो जाने पर हम सहज ही सोचने लगते हैं कि अब हम क्या होंगे ! हमारे जीवन की यह निर्बलता सदा के लिए हमको निराश बना देती है और इस निराशा के आधार पर ही हम समय के पूर्व ही बूढ़े हो जाते हैं। इसका कारण सिवा इसके और कुछ नहीं है कि हमको स्वास्थ्य और शक्ति का सच्चा ज्ञान नहीं है। स्वास्थ्य कैसे उत्पन्न किया जा सकता है और उसके नष्ट हो जाने के कारण क्या होते हैं, इस पर हम ध्यान नहीं देते। मैंने स्वयं बीस-बाईस वर्ष के युवकों को स्वास्थ्य के सम्बन्ध में निराश होते देखा है और जब उनको विश्वास दिलाया है कि थोड़े से प्रयत्न के द्वारा आप फिर स्वस्थ हो सकते हैं तो यह सुन कर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ है। यदि कोई मनुष्य बीस बाईस वर्ष की अवस्था में स्वास्थ्य के लिए निराश हो सकता है तो इससे अधिक आश्चर्य की बात और हो ही क्या सकती है! हमारे देश में बीस-पच्चीस के पश्चात् तो कदाचित स्वस्थ होने की अवस्था ही नहीं गिनी जाती ! इसका यह स्पष्ट अर्थ है कि अज्ञान में पड़ कर हमने न केवल दुखों-कष्टों को आमंत्रित किया है, वरन् जीवन का एक बड़ा हिस्सा ही अपने हाथ से खो दिया है! स्वास्थ्य से निराश व्यक्तियों को

इन पंक्तियों के द्वारा यह सन्देश है कि तीस-बत्तीस वर्ष की अवस्था में ही नहीं चालीस वर्ष के उपरान्त भी स्वास्थ्य का सुख देखा जा सकता है। वह न तो किसी ऋषि के आशीर्वाद से प्राप्त हो सकता है और न उसके लिए संख्यातीत रुपयों को मिट्टी में मिलाने की जरूरत होती है। यह कुछ न करके हमें केवल अपने जीवन में थोड़ा सा परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी और जिस स्वास्थ्य और शक्ति को हम प्राप्त करना चाहते हैं उसके लिए हमें थोड़ा-सा प्रयत्न और कार्य करना पड़ेगा, केवल इतने ही के द्वारा हम अपनी पैंतालीस वर्ष की अवस्था में भी इसे प्राप्त कर सकते हैं। स्वास्थ्य,शक्ति और सौंदर्य—ये तीनों बातें हमारे जीवन में ऐसी हैं जिनको हम, तनिक भी निराश होने पर सदा के लिए अपने जीवन से खो सकते हैं और आशावान होने पर सदा हम अपने जीवन में उनकी रक्षा और व्यवस्था कर सकते हैं।

स्वास्थ्य का अर्थ और उपभोग

यह बात निश्चय-पूर्वक मान लेना चाहिए कि अपनी अज्ञानता और निर्बलता के कारण हम अपने स्वास्थ्य को असमय खो बैठते हैं और एक बार स्वास्थ्य नष्ट हो जाने के पश्चात् सदा के लिए उससे निराश हो जाते हैं। मुझे मालूम है कि शत प्रतिशत स्त्री-पुरुषों में बालक और बालिकाओं में, स्वस्थ बनने की अभि-

रुचि होती है, किन्तु वे सभी स्वस्थ नहीं होपाते, हो भी नहीं सकते। केवल इतना चाहने ही से तो जीवन की अलभ्य वस्तु नहीं मिल जाया करती। जीवन में जो मूल्य स्वास्थ्य, शक्ति और सौंदर्य का हो सकता है, उतना मूल्य किसी वस्तु का हो सकता है ? धन ऐश्वर्य, कुल शिक्षा आदि सभी बातें तो उसके सामने अपना मूल्य कुछ नहीं रखतीं ? फिर जीवन में रह क्या जाता है ? ऐसी अवस्था में हम जब अन्यान्य बातों के लिए सदा अनवरत परिश्रम ही नहीं वरन तपस्या करते हैं तब उसको प्राप्त करते हैं और स्वास्थ्य केवल हमारे चाहने से ही प्राप्त हो जाय ? इसके ये अर्थ होते हैं कि स्वास्थ्य हमारे लिए नहीं उत्पन्न किया गया और हम स्वास्थ्य के लिए नहीं पैदा हुए ! !

संसार की किसी समुन्नत जाति की अवस्था पर विचार न करके यदि हम केवल अपने देश की वर्तमान अवस्था पर ही विचार करें और यह जानने की चेष्टा करें कि हमारे जीवन में स्वास्थ्य के लिए कितना आदर रह गया है तो हमें बहुत-सी बातों का अपने आप ज्ञान हो जायगा।

स्वास्थ्य का अर्थ तो समाज के नेत्रों में केवल इतना रह गया है कि हम बीमार न पड़ें, साधारण चलते-फिरते रहें, लोगों के देखने में हम असुन्दर न जान पड़ें, यही स्वास्थ्य है। सम्भव है स्वास्थ्य का अर्थ किसी ने यही किया हो और हो भी सके किन्तु हम तो स्वास्थ्य का यह अर्थ स्वास्थ्य की अत्यन्त प्रारम्भिक

अवस्था समझते हैं, जिसकी आवश्यकता हमको नित्य ही अपने जीवन में पड़ती है। किन्तु इसके आगे चलकर स्वास्थ्य की जो दूसरी आवश्यकता पड़ती है, वह यह कि हम स्वास्थ्य के द्वारा अपने शरीर में शक्ति का संचय कर सकें और वह शक्ति हमारे लिए समय असमय सहायक हो सके। जीवन के साधारण से साधारण अवसर पर भी यदि हमारा कोई अपमान करना चाहे तो हम भरसक उसका सामना कर सकें। चोर, डाकू और बदमाश यदि हमको, हमारे परिवार को, स्त्री बच्चों को कुछ हानि पहुँचाना चाहें, तो हम उनके दाँत खट्टे कर दें! इस प्रकार स्वास्थ्य और शक्ति का यह व्यक्तिगत उपयोग होता है। इसके पश्चात् उसका सार्वजनिक उपयोग होता है। यदि हम देखें कि किसी अत्याचारी जाति ने हमारी जाति पर आक्रमण करके उसको नष्ट-भ्रष्ट करने और लूटने की चेष्टा की है तो हम अपने बल और पुरुषार्थ से उसका इस प्रकार सामना करें कि वह स्वयं नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। जब हम देखें कि हमारे देश और राष्ट्र को लूटने के लिए अन्य देश वालों ने आक्रमण किया है तो हम सब मिल कर, अपने स्वास्थ्य, बल और पुरुषार्थ का परिचय दें। इस प्रकार स्वास्थ्य और शक्ति का उपयोग और अर्थ बराबर आगे बढ़ता जाता है, यदि हम स्वास्थ्य का केवल यही अर्थ लेते हैं कि हमको पाचन शक्ति के लिए कहीं चूर्ण न खोजना पड़े, प्रत्येक दिन जूड़ी बुख़ार के लिए किसी वैद्य डाक्टर की दूकान पर

न्ी न बैठा रहना पड़े तो वास्तविक स्वास्थ्य को हम बहुत कम चाहते हैं।

स्वास्थ्य के इस पूर्ण अर्थ को लेकर हमको अब यह देखने की आवश्यकता है कि वास्तव में क्या हम इस स्वास्थ्य को चाहते हैं। इस प्रश्न के उत्तर में कदाचित पंचानवे प्रतिशत व्यक्ति इसका विरोध करेंगे। उनकी समझ में यह कभी नहीं आसकता कि ये काम भी भले आदमियों के हो सकते हैं। लड़ना-भिड़ना, किसी को कुछ कहना सुनना, राम, राम, राम यह भी कुछ भले आदमियों का काम है! यदि इक्केवाले ने चार पैसे के लिए हमारा कोट पकड़कर कहा कि पैसे देकर जाना, नहीं तो अभी बाबूपना बिगाड़ देंगे, तो हमें भलमनसाहत की रक्षा करते हुए तुरन्त उसे पैसे दे देना चाहिए। रेलगाड़ी में यात्रा करते हुए खड़े रहना हमें गवारा है किन्तु किसी से जबान लड़ाना तो छोटापन है! इस प्रकार जीवन में क्षण-क्षण भर में कितने अपमान, कितने अत्याचार हम नहीं सहते, किन्तु ये सब इसलिए सह लेते हैं कि लड़ना-भिड़ना उजड्डपन है! यह जीवन कितना लज्जापूर्ण है! इस जीवन में कितना अपमान है!! जो लोग इस प्रकार की बातों को सहने और अपने सिर पर लेने के अभ्यासी हो गये हैं उनको तो वास्तव में इन बातों में कुछ न खटकता होगा, नहीं तो प्रायः नित्य ही ऐसी अनेक बातें देखने को मिलती हैं जो इस अपमान और लज्जा का स्मरण दिलाती हैं, और इन

सब बातों के सहने का एक मात्र कारण यह है कि हमारे शरीर का बल, पुरुपार्थ—सब का सब नष्ट हो गया है। यह असम्भव है कि शरीर के बल और पुरुपार्थ रहते हुए हम अपना अपमान देख सकें और सह सकें। जिस देश और समाज के स्त्री-पुरुप इस प्रकार स्वास्थ्य और शक्ति में, वल और पुरुपार्थ में क्षीण-दुर्बल तथा नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं, वह देश और समाज दूसरों का ग़ुलाम हो कर रहता है और उस दिन तक गुलाम रहता है जिस दिन तक उस देश और समाज के स्त्री-पुरुष अपने जीवन की इस खोई हुई शक्ति को फिर नहीं प्राप्त कर लेते !

ऊपर हम वता चुके हैं कि स्वास्थ्य से हमारा अभिप्राय क्या है। इस स्वास्थ्य के अभाव में हमारी जिस प्रकार व्यक्तिगत और जातिगत मानसिक निर्बलता हो गई है, इसके सम्बन्ध में दो एक वातों का यहाँ पर उल्लेख करना आवश्यक हो गया है। कानपुर के हिन्दू-मुसलिम दंगे को अभी अधिक समय नहीं गुजरा। यों तो देश में हिन्दू-मुसलमानों के दंगे होते ही रहते हैं किंतु कानपुर के दंगे का ब्रिटिश इण्डिया के इतिहास में विशेप स्थान रहेगा। जिस समय मुसलमानों के झुंड के झुंड कांता-बल्लमें, लाठियां, करौली आदि अस्त्र लिए हुए हिंदू परिवारों और घरों को लूटते मारते हुए घूम रहे थे, एक दिन की बात है एक हिन्दू कोठी वाले पर चढ़ाई करने के लिए मुसलमानों का एक झुंड चला। कोठी के फाटक पर दो गोरखा बन्दूकें लिए खड़े थे,

उन्होंने देखते ही कोठी पर अपने बाबू लोगों को सूचित कर दिया, कोठीवालों के घर में स्त्रियों और बच्चों का रोना चिल्लाना आरम्भ हो गया, दोनों गोरखों के हाथों में खाली बन्दूकें थीं, गोलियाँ-कारतूस न थे, उन्होंने अपने मालिक से बड़ी तेज़ी से प्रार्थना की कि हमें कारतूस तुरन्त लाओ, हम दस मिनट में इनको यहाँ से भगाए देते हैं। मालिक-लोग—कोठीपति इस बात का साहस न कर सके। जब वह झुन्ड निकट आगया, फाटक पर पहुँचा, तब तो ज़ोर से चिल्लाकर गोरखों ने गोलियाँ माँगी और फायर करने के लिए बन्दूकें उठाईं। मालिकों ने रोते चिल्लाते हुए कहा कि नहीं, ऐसा नहीं कर सकते, हमारे लाइसेन्स ज़ब्त हो जायंगे! इधर ये बातें हो रहीं थीं, उधर आक्रमणकारी मुसलमानों ने आगे बढ़कर दोनों गोरखों पर काँता बँधी हुई लाठियों के वार किए और दोनों वीर, पल्टन के पेन्शनर गोरखे बात की बात में धराशायी हुए! इसके पश्चात् आक्रमणकारी कोठी के ऊपर चढ़े और मार-पीट करने के साथ-साथ जो कुछ पाया, लूटमार कर ले गए!! इस घटना को सुनकर और जानकर कोई भी बिना विस्मय के साथ न रह सकेगा। बन्दूक और लाइसेंस और किस लिए होता है! इस प्रकार के उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि उस जाति और समाज के बल-पुरुषार्थ का नाश हो चुका है।

स्वास्थ्य के लिए चार बातें

शरीर में स्वास्थ्य और शक्ति प्राप्त करने के लिए चार बातें मुख्य हैं, उन्हीं पर ध्यान देने की आवश्यकता है। उन्हीं चार के द्वारा हम स्वस्थ और शक्तिशाली बन सकते हैं और उन्हीं के नष्ट करने से हम क्षीणकाय, दुर्बल और स्वास्थ्यहीन हो जायंगे, वे चार बातें हैं। (१) भोजन (२) परिश्रमशील जीवन (३) व्यायाम और (४) समय तथा सदाचार। इन्हीं चार बातों के सम्बन्ध में अन्त में हमें विचार करना है और यह बता देना है कि जिस व्यक्ति, जाति अथवा समाज में स्वास्थ्य और शक्ति का अभाव हो गया है, वह शक्ति, जाति और समाज इन चारों बातों का यथोचित ज्ञान नष्ट कर चुका है। जिस समय हमारे अन्तः करण में स्वास्थ्य और शक्ति के सम्बन्ध में विचारों का परिपालन हो जाय, उस समय और उसके पश्चात हमको ऊपर बताई गई चारों बातों के सम्बन्ध में खोज करना चाहिए।

हमको यह जानना चाहिए कि हमारे जीवन के साथ भोजन का क्या सम्बन्ध है। किस प्रकार के भोजनों से हमारे शरीर को स्वास्थ्य शक्ति और पुरुषार्थ प्राप्त हो सकता है और किस प्रकार भोजनों से हम दिन पर दिन दीन-हीन होते जाते हैं?

यह तो कदाचित सभी लोग जानते हैं कि घी दूध के समान दूसरा कोई खाद्य पदार्थ उपयोगी नहीं है। यदि हम आवश्यकता-

नुसार इन दोनों वस्तुओं का सेवन कर सकें तो हमारे शरीर किसी प्रकार निर्बल नहीं रह सकते। दूध और घी के द्वारा खाने की न जाने कितनी चीजें बनती हैं जो शक्तिवर्धक होती हैं, इस प्रकार की बातों का अध्ययन करने अथवा जानकारों से जान सकने में किसी को अधिक कठिनाई नहीं हो सकती। केवल उस ओर अपनी रुचि होनी चाहिए। यहाँ पर शक्तिवर्द्धक भोजनों का अधिक विवेचन न करके इसका भार पाठकों पर छोड़ कर यह बताना आवश्यक है कि इसके सम्बन्ध में किसी को अपनी असमर्थता अनुभव करने और सोचने की आवश्यकता नहीं है। यह झूठ है कि कोई व्यक्ति अपनी निर्धनता के कारण अच्छे भोजनों की व्यवस्था नहीं कर सकता। समाज में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का यदि अध्ययन किया जाय तो सहज ही यह मालूम किया जा सकता है कि वह अपने भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति न करके, अनेक प्रकार की बातों में अपने पैसे-रुपए का नाश करता है। धनहीन मजदूर, किसान, छोटे-छोटे नौकर-चाकर और साधारण गृहस्थों की दीन हीन स्त्रियाँ ही उन असमर्थों में बताई जा सकती हैं किन्तु इनके जीवन का यदि अध्ययन किया जाय तो सहज ही जाना जा सकता है कि मजदूर ही मादक पदार्थों का सेवन करने में, किसान ही ब्याह-शादी तथा काम-काज के समय रुपयों का नाश करने में, बहुत कम वेतन भोगी नौकर बीड़ी सिगरेट पान आदि के लिए खर्च करने में और गरीब घरों

की स्त्रियां मूल्यवान आभूषण बनवाने में किस प्रकार अपने जीवन का सत्यानाश करती हैं। यदि उनको इस प्रकार की बातों का सच्चा ज्ञान पैदा कराया जाय और अनुचित अभ्यासों से उनका पिंड छुड़ाकर उनको स्वास्थ्य और शक्ति प्राप्त करने की ओर लगाया जाय तो वे अपने जीवन में बड़ी उन्नति कर सकते हैं। जो भोजन हमारा जीवन है, जिस भोजन के द्वारा हम स्वस्थ, शक्तिशाली और सुखी बन सकते हैं, उस भोजन के प्रति स्त्री-पुरुषों में, बालक-बालिकाओं में किस प्रकार की उपेक्षा होती है! समाज में कितने मिलेंगे जो अपनी रुचि के अनुसार सुन्दर ताजा भोजन अपने हाथ से बनाकर श्रद्धा और विश्वास के साथ खाते हों? कहने का अभिप्राय यह है कि भोजन की ओर जो समाज की उदासीनता बढ़ती जाती है, केवल हमारे स्वास्थ्यहीन और दुर्बल होने का बहुत अंशों में यही कारण है!!

भोजन के पश्चात परिश्रमशील जीवन हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है। हमारे जीवन परिश्रम के विरोधी हो गए हैं। परिश्रम करना हम भूल ही नहीं गए, परिश्रम करने में हमने अपना अपमान समझ रक्खा है। हमारे जीवन की यह दूसरी बात है जो हमारे स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाती है। अपने घर में छोटे-छोटे कामों को करने में, यात्रा के समय दो ढाई सेर का हैण्ड बाक्स भी रेलगाड़ी से उतार कर लेकर चलने में, शिक्षितों, शहर के

बाबुओं और सुखी घर के लोगों ने अपने लिए घोर अपमान की बात समझ रखी है ! बाज़ार से यदि आठ आने के गेहूँ लाते हैं जो चार पाँच सेर से अधिक न मिलेंगे तो उनको लेकर एक मज़दूर आवेगा और उसको एक आना देना पड़ेगा। शहरों में इक्का भाड़ा, ट्राम का किराया इतना बढ़गया है कि मामूली से मामूली आदमी भी दो चार आने नित्य व्यय करता है, ये खर्च मिलाकर कम से कम पाँच-छः महीने के होते हैं। अब प्रश्न यह है कि शहरों में कितने परिवार होंगे जिन में महीने में पाँच-छः रुपए का दूध आता हो ?

इतना सब हो चुकने पर, शरीर को और भी अधिक पुष्ट, शक्ति-पूर्ण और बलशाली बनाने के लिए व्यायाम की आवश्यकता है। व्यायाम हमारे शीर को सुगठित बनाता है। शरीर के अंग-प्रत्यंग को शक्ति प्रदान करता है। केवल इतना ही नहीं होता, व्यायाम से हमारे शरीर की शक्ति का संचय होता है। किस अंग को कहां पर मोटा और कहां पर क्षीण होना चाहिए, यह सब व्यायाम के द्वारा सम्पादन किया जाता है। जिस प्रकार हमें नित्य भोजन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार नियमपूर्वक हमारे लिए व्यायाम की जरूरत है। व्यायाम का अभ्यास सदा बनाए रहने से हम बुढ़ापे में भी युवावस्था को अनुभव कर सकते हैं और व्यायाम न करने के कारण युवावस्था में हीं हम बुढ़ापे को प्राप्त होते हैं ! जितना ही हम अपने जीवन में व्यायाम

को स्थान देंगे उतना ही हम अपने शरीर को पुष्ट, सुगठित और शक्तिशाली बना सकेंगे।

चौथी बात हमारेज जीवन में संयम और सदाचार की है। दोनों का एक ही अर्थ है—एक ही काम है। संयम के द्वारा हम अपने शरीर की शक्ति का संरक्षण करते हैं। इस संरक्षण के द्वारा ही हमारे शरीर में शक्ति और सौंदर्य का संचय होता है। सदाचार के बिना स्वास्थ्य और शक्ति का प्राप्त करना असम्भव है। इसलिए हमें अपने विचारों और व्यवहारों में—दोनों में सदाचार और संयम का पालन करना चाहिए। जिन बातों का आचरण करने में हानि होती है उनका विचार करना भी कम हानिकर नहीं होता। संयम और सदाचार पालन करने के कितने ही साधन होते हैं, अच्छी-अच्छी पुस्तकों का अध्ययन करना जिन के द्वारा हमारे मन में सद्विचार आविर्भूत हो सकते हैं, इस प्रकार के आदमियों की संगति करना जिनसे हमारे जीवन में कुत्सित विचारों का नाश हो सकता है, हमारे लिए आवश्यक है। सारांश यह है कि जिस प्रकार अपने मन और अन्तःकरण में संयम की रक्षा हो, उसी प्रकार के जीवन का उपभोग करना चाहिए।

ऊपर जिन बातों का विवेचन किया गया है, वे बातें सब को समान रूप से लाभ पहुँचा सकती हैं। केवल लगन की आवश्यकता है। जितनी ही हमारी लगन उन बातों की ओर बढ़ती जायगी उतनी ही अधिक सफलता हम अपने जीवन में प्राप्त कर सकेंगे।

६—स्वास्थ्य का मूलः शुद्ध वायु

हमारा शरीर जिन तत्वों से बना है, उनमें वायु मुख्य है। इसी लिए जीवित रहने के लिए जितनी आवश्यकता हमको वायु की पड़ती है, उतनी और किसी की नहीं। हम भोजन के बिना कितनेही दिन काट सकते हैं, जल के बिना भी हम अधिक समय तक जीवित रह सकते हैं किन्तु वायु के बिना हमारे मिनटों का कटना कठिन हो जाता है। यह बात इतनी साधारण है जिसे प्रत्येक व्यक्ति सहज ही अनुभव कर सकता है।

यह समझ लेने के बाद, कि हमारे जीवन का सबसे अधिक सम्बन्ध वायु के साथ है, यह सहज ही माना जा सकता है कि हमें उसकी आवश्यकता का प्रबन्ध भी उतना ही अधिक करना चाहिए। श्वास के द्वारा हम जो बाहर से वायु को भीतर ले जाने का काम करते हैं, यह क्रिया हमारे जीवन में बराबर जारी रहती है, यदि एक-दो मिनट के लिए भी यह क्रिया रोक दी जाय और बाहर से हमारे शरीर के भीतर वायु का जाना रुक जाय तो हमारा दम घुटने लगता है। यदि थोड़ी देर के लिए भी हमारी सांस रोक दी जाय और हमारे शरीर के भीतर वायु का जाना रुक जाय तो हमारी मृत्यु हो जाय।

हमें किस प्रकार की वायु चाहिये ?

वायु के दो बड़े भाग किये जा सकते हैं, एक का नाम है ओषजन और दूसरे का नाम है कर्बन द्वि ओषिद हम अपनी साँस के द्वारा बाहर से जिस प्रकार की वायु भीतर ले जाते हैं, उसका नाम है ओषजन और जिस वायु को सांस के द्वारा भीतर से बाहर फेंकते हैं, उसका नाम है कर्बन द्वि ओषिद। हम नहीं, मनुष्य मात्र ही नहीं, प्राणी मात्र को ओषजन की आवश्यकता है और जिस प्रकार हम कर्बन द्वि ओषिद अपनी सांसों से बाहर निकालते हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणी कर्बन द्वि ओषिद पैदा करते हैं और अपनी तेज साँसों के द्वारा बाहर फेंकते हैं।

छोटे-बड़े सभी प्रकार के वृक्ष, पौदे कर्बन द्वि ओषिद खींचते हैं और ओषजन छोड़ते हैं। जिस प्रकार हमारे जीवन के तत्व हमको ओषजन से प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार कर्बन द्वि ओषिद से वृक्षों और पौदों को जीवन के तत्व प्राप्त होते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि जो वायु हमारे शरीर से बाहर निकलती है और जो हमारे लिए विषैली होती है उससे वृक्षों, पौदों मात्र का पोषण होता है और वे पौदे तथा वृक्ष जिस प्रकार की वायु पैदा करते हैं और जो उनके लिए विषैली होती है, उसके द्वारा हमारा पोषण होता है। जिस ओषजन पर

हमारा जीवन निर्भर है, आगे चल कर हम उसी को शुद्ध वायु के नाम से प्रयोग करते हैं, उसके विरुद्ध जो वायु हमारे लिए विषैली होती है वह अशुद्ध है।

हमारे शरीर में वायु के उपयोग

जो वायु इतनी आवश्यक है कि जिसके बिना थोड़ी देर भी हमारा जीवित रहना असम्भव है, उस वायु का हमारे शरीर से क्या सम्बन्ध है और वह हमारे शरीर में क्या काम करती है, यह जानने के लिए सहज ही जिज्ञासा पैदा होती है।

बहुत सावधानी के साथ वायु के उपयोग समझने की आवश्यकता है। हमें सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शुद्ध वायु का सेवन ही हमारा स्वास्थ्य है और वही हमारा जीवन है। जिनको इस बात का ठीक ठीक ज्ञान नहीं है, और जो अपनी अपनी अज्ञानता के कारण अपने शरीर में शुद्ध वायु नहीं पहुँचा सकते, वे सदा रोगी, निर्बल और जीर्ण-शरीर रह कर, समय से पूर्व ही संसार छोड़ कर चले जाते हैं। यदि हमें अपने जीवन का सच्चा ज्ञान हो तो हम कभी रोगी, निर्बल और अल्पायु नहीं हो सकते।

मनुष्य के शरीर में छोटी-बड़ी, सभी प्रकार की सैकड़ों रक्त-प्रवाहिनी नलियाँ होती हैं। उन्हीं में होकर शरीर का रक्त सारे शरीर में दौड़ा करता है। रक्त की यह गति कभी भी बंद नहीं

होती और जब जिस अंग में रक्त की गति रुक जाती है वह अंग निर्बल, रोगी होकर हमारे काम का नहीं रह जाता। यह अवस्था हमारे शरीर की है। यदि हमारे शरीर में रक्त की गति रुक जाय तो हमको अपने जीवन का अन्त ही समझना चाहिए।

यह रक्त की गति ही हमारा जीवन है, हमारी कार्य-शक्ति है, हमारे जीवन का प्रोत्साहन है। जब रक्त की गति मन्द हो जाती है तो हमारी शिथिलता बढ़ जाती है, कुछ भी करने को जी नहीं चाहता। प्रत्येक घड़ी शरीर में मुर्दनी सी बनी रहती है। यह सब रक्त की गति पर निर्भर है।

शरीर के समस्त अंगों में दौड़ता हुआ रक्त दूषित और विकृत हो जाता है, उस समय वह फेफड़ों में जाकर रुक जाता है और श्वास के द्वारा जो हमारे फेफड़ों में शुद्ध हवा पहुँचती है, वह उस रक्त में मिश्रित हो जाती है। उस शुद्ध वायु के सम्मिश्रण से रक्त का विकृत अंश पृथक हो जाता है और पृथक होकर प्रश्वास के द्वारा बाहर आ जाता है। इस प्रकार फेफड़ों में जो दूषित रक्त आकर इकट्ठा हुआ था, वह शुद्ध होकर फेफड़ों से फिर लौट जाता है और शरीर में उसका दौड़ना आरम्भ कर देता है। इस शुद्ध वायु के द्वारा हमारे फेफड़ों में रक्त के परिशोधन का कार्य प्रत्येक क्षण हुआ करता है, रक्त का जितना अंश विकृत हो जाता है, वह फेफड़ों में आकर रुक जाता है और शुद्ध वायु से मिलकर और शुद्ध होकर फिर लौट जाता

है, उसके बाद दूसरा रक्त आता है और इसी प्रकार उसके शुद्ध होने की क्रिया काम करने लगती है। दूपित रक्त का फेफड़ों में आना, उसका शुद्ध होना और विकृत अंश का बाहर निकलना आदि कार्य हमारे फेफड़ों में उतनी ही शीघ्रता के साथ हुआ करते हैं जितनी शीघ्रता के साथ हम अपनी नाक के द्वारा श्वास-प्रश्वास का कार्य करते रहते हैं।

हमारे शरीर के भीतर रक्त में जो दूपित अंश उत्पन्न हो जाता है, उसका शुद्ध करना उस वायु का प्रधान काम है जिसको हम सांस के द्वारा भीतर लेजाते हैं। और जो सांस भीतर से लौटकर बाहर आती है, उसके द्वारा उस रक्त का विकृत अंश निकलता है जो दूपित होने के कारण शुद्ध होने और विकृत अंश को बाहर निकालने के अर्थ फेफड़ों में आकर इकट्ठा हुआ था।

यहाँ पर यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि वायु का काम है रक्त को शुद्ध करना। परन्तु यहाँ पर यह समझने की बड़ी आवश्यकता है कि रक्त में उत्पन्न हुआ दूपित अंश हमारे शरीर के लिए किस प्रकार विपैला है। उसके विषमय प्रभाव को समझने के लिए हमारे सामने एक प्रबल प्रमाण यह है कि यदि एक दो मिनट के लिए हम सांस का लेना रोक दें तो हमारा दम क्यों घुटने लगता है, और क्या साहस करके कोई दस मिनट तक भी सांस लेने का काम रोक सकता है? ऐसा क्यों है?

यदि हम सांस नहीं लेते, तो हमारी क्या हानि होती है ? इन प्रश्नों का उत्तर तो एक ही है, सांस के द्वारा जो वायु हमारे भीतर फेफड़ों में जाती है, वह केवल रक्त को शुद्ध ही तो करती है। जब हम सांस नहीं लेते, तो रक्त शुद्ध होना रुक जाता है, इसका फल यह होता है कि रक्त में जो विकृत अंश उत्पन्न हो जाता है, वह बाहर न निकल कर हमारे शरीर में ही रुक जाता है। उस दूषित अंश का यह प्रभाव होता है कि यदि एक-दो मिनट के लिए भी बाहर न निकले और जहाँ का तहाँ ठहर जाय तो उससे हमारे प्राण छटपटाने लगते हैं। यदि हमारे उस रक्त के शुद्ध होने का कार्य कुछ दिनों के लिए रुक जाय अथवा शुद्ध होने का कार्य ठीक ठीक न हो तो हमारी क्या दशा हो सकती है ? यह प्रश्न विचारने के योग्य है।

दूषित वायु का प्रभाव

ऊपर के प्रश्न पर विचार करने के पूर्व हमें यह जाना लेना चाहिए कि हम अपने आप सांस का लेना तो रोक ही नहीं सकते, इसलिए रक्त के शोधन का कार्य बराबर होता ही रहता है, किंतु जिन अवस्थाओं में रक्त के शोधन का कार्य रुक जाता है, अथवा-ठीक-ठीक नहीं होता, उन अवस्थाओं और उनके भीषण परिणामों का संक्षेप में यहाँ पर उल्लेख कर देना परम आवश्यक जान पड़ता है।

रक्त के शुद्ध करने का काम केवल ओपजन के द्वारा होता है। यदि हम ऐसे स्थान में सांस लेने का काम करते हैं जहाँ पर ओपजन नहीं है तो इसका यह अर्थ होता है कि जिस विपाक्त अंश को रक्त से पृथक कर हम बाहर फेंकते हैं उसीको हम फिर भीतर ले जाते हैं और वह केवल अपना ही नहीं सैकड़ों-हज़ारों दूसरे आदमियों का! इसी का यह फल है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति आज रोगी है।

वे रोग क्या हैं! ब्रह्मा ने हमारे कपाल में रोगों के भोगने का खाता नहीं लिख रखा। हम अपनी जीवनचर्या में जितनी ही भूलें करेंगे, उसके परिणाम-स्वरूप हम उतने ही रोगी होंगे। अपराध करने पर दंड मिलता है। रोग हमारे अपराधों के दंड मात्र हैं। जीवन में जो स्वाभाविकता होनी चाहिए, उसके न होने पर रोगों का उत्पन्न होना तो निश्चय ही है। हम संसार की दूसरी बातें जितनी जानते हैं, उतनी हम अपने शरीर की नहीं जानते। स्कूलों में भारत के एक छोटे-से विद्यार्थी को जर्मन का भूगोल तो पढ़ाया जाता है किन्तु उसके शरीर का भूगोल उसे नहीं बताया जाता। इस प्रकार इन बालकों को हजारों कोस दूर देशों के लोगों की बातें जानने का तो मौक़ा मिलता है परन्तु उनको अपने शिक्षाकाल में यह अवसर नहीं मिलता जिनमें वह जाने कि हमारा शरीर क्या है, उसकी बनावट क्या है, हम स्वस्थ कैसे रह सकते हैं और शरीर

रोगी कैसे होता है। यदि यह दुरवस्था न होती तो आज यह हमारे शरीर रोगों के घर क्यों वने होते ?

शहरों का जीवन इस नाते अत्यन्त पापमय है। जीवन की स्वाभाविकता को मिटाने के लिए शहरों की सभी बातें पूर्णरूप में पर्याप्त हैं। जिन बातों पर हमारे जीवन की स्वाभाविकता निर्भर है शहरों का जीवन उनके विल्कुल उलटा है। यहाँ पर अधिक न पाकर नगरों के कुत्सित जीवन, आचरणहीन जीवन और अस्वाभाविक जीवन को पाठक दूसरे परिच्छेद में पढ़ेंगे। यहाँ पर तो केवल यही वताना है कि जो वायु हमारे जीवन की मुख्य है उसके प्राप्त करने में हम कितनी भूलें करते हैं और ऐसी अवस्था में हम किस प्रकार रोगों के शिकार होते हैं।

हमें अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में ऐसा स्थान चाहिए जहाँ पर खूब शुद्ध वायु हो और उसके द्वारा हमारे रक्त के शोधन का कार्य विना किसी रुकावट के प्रत्येक क्षण होता रहे। किसी भी रोग का आक्रमण होने पर हम वैद्य अथवा हकीम के पास दौड़ते हैं, किन्तु एक क्षण के लिए भी हम यह विचार नहीं करते कि हमारे शरीर में किसी भी रोग के प्रवेश करने का कारण क्या हुआ! इसका परिणाम वड़ा भीषण हुआ है! प्रकृति ने हमारे शरीर की रचना इसलिए नहीं की कि हम अस्पतालों, औषधालयों और हकीम के नुसख़ों पर जीवित

रहें। हम जीवन के प्राकृतिक रूप से विलकुल दूर हैं, इसीलिए रोगी हैं, दुखी हैं!

शुद्ध वायु कहाँ मिलती है?

शुद्ध और अशुद्ध वायु किसे कहते हैं और कौन कहाँ होती है यह जानने की जरूरत है। शुद्ध वायु, जिसकी हमें आवश्यकता है, वहाँ होती है (१) जहाँ जितने ही अधिक वृत्त, घास, छोटे-बड़े सभी प्रकार के पौदे होते हैं। वागों वगीचों, फुलवाड़ियों, पहाड़ों और जंगलों में शुद्ध वायु खूब पायी जाती है।

(२) गाँवों, वस्ती के वाहर, हरे हरे खेतों, नदी जैसे जलाशयों के किनारे की वायु भी स्वास्थ्यप्रद और शुद्ध होती है यदि वस्ती से वे किनारे दूर हों। जिन नदियों के किनारे गाँव बसे होते हैं, उन गावों के निवासी नदी के किनारे जा बहुत दूरतक पाखाना फिर कर और मल-मूत्र त्याग कर गन्दा कर देते हैं।

(३) समुद्र के किनारों और मैदानों की वायु भी शुद्ध और स्वास्थ्यप्रद होती है।

ऊपर लिखे हुए स्वास्थ्य देनेवाले स्थानों में जितना ही अधिक वायु सेवन किया जा सके, उतनाही हमारे स्वास्थ्य को लाभ हो सकता है। शहरों की अपेक्षा, देहातों की वायु शुद्ध और उपयोगी होती है और जिन गाँवों में सफाई का

प्रबन्ध होता है, बस्ती के भीतर और आस-पास, कहीं निकट कूड़ा-कर्कट जहाँ न डाल कर बस्ती से दूर, बाहर डालने का प्रबंध होता है, इसके सिवा स्वास्थ्यजनक अनेक आवश्यक बातों का कुछ भी जिन देहातों में प्रबंध होता है, वहाँ की वायु शहरों की अपेक्षा बहुत अच्छी होती है। जिन शहरों में सफाई का प्रबन्ध नहीं होता वे तो मनुष्यों के लिए नरक होते ही हैं किंतु जितने भी बड़े शहर हैं उनमें चाहे जितनी सफाई रखी जाय, उनमें शुद्धवायु का होना और मिलना असंभव होता है। कुछ बड़े आदमी जिनको सब प्रकार की आर्थिक सुविधायें होती हैं,भले ही अपने लिए स्वास्थ्यप्रद स्थानों का प्रबन्ध करलें, किंतु बड़े-बड़े शहरों में लाखों की संख्या में गरीब और साधारण कोटि के गृहस्थ लोग, स्त्री-बच्चों के साथ जिस प्रकार की गन्दी गलियों, सड़े मकानों और घरों में रह कर अपने जीवन के दिन काटते हैं,उनको देखकर नरक के बीभत्स दृश्य आँखों के सामने खड़े होते हैं। इन लाखों की संख्या में शहर के निवासी स्त्री, बच्चे और पुरुष महीने के तीस दिन रोगी रहते हैं। उनकी इस रोग-शोक-पूर्ण अवस्था को देखकर बड़ा तरस आता है। वास्तव में इस अवस्था के लोगों को अपनी स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातों का कुछ ज्ञान नहीं है, इसीलिए वे अपनी दशा को सुधारने और अच्छे स्वास्थ्य-प्रद स्थानों में रहने का कुछ भी नहीं करते।

शुद्ध वायु के साथ साथ यह भी जानने की आवश्यकता है कि वायु अशुद्ध कैसे होती है और कहाँ-कहाँ, किन-किन स्थानों की वायु अशुद्ध, अग्राह्य हुआ करती है। इसका यथोचित ज्ञान होने से यह लाभ होता है कि मनुष्य उन स्थानों और उनकी अशुद्ध वायु से अपनी रक्षा कर पाता है। वायु के अशुद्ध होने के कारण और उनके स्थान इस प्रकार होते हैं—

(१) कसबों और शहरों की वायु अशुद्ध होती है।

(२) जहाँ पर अधिक मनुष्य रहते हैं, उस स्थान की वायु खराब हो जाती है।

(३) जहाँ पर जानवर, गाय, भैंस, बकरी, बैल, घोड़े आदि बाँधे जाते हैं, वहाँ की वायु अशुद्ध होती है।

(४) हलवाइयों की भट्टी, मिट्टी के तेल के चिराग जलने से भी बहुत खराब होती है। कारखानों के इंजनों और सड़नेवाले पदार्थों के द्वारा वायु अत्यन्त खराब होती है।

हम जिस प्रकार के स्थानों में रहते हैं, उनमें सदा-सर्वदा हमें अशुद्ध वायु का ही सेवन करना पड़ता है; कारण यह है कि उन स्थानों की वायु अशुद्ध हो जाती है किंतु इस बात का हमें न तो ज्ञान होता है और न हम उसका ज्ञान चाहते ही हैं। नीचे की पंक्तियों में उन स्थानों का कुछ विवेचन दे देना अनुचित न होगा जिनकी अशुद्ध वायु से हमारे स्वास्थ्य का नाश होता है—

(१) छोटे-छोटे घरों में अनेक स्त्री-पुरुषों और बच्चों का होना और विशेष कर रात में समस्त किवाड़ों, खिड़कियों को बंद करके सोजाना, इससे होता यह है कि सब के सब अपनी अपनी सांसों के द्वारा जो अशुद्ध वायु भीतर से निकालते हैं, जिसके विषाक्त प्रभाव का पहले विवेचन किया जा चुका है, वह घर की वायु में व्याप्त हो जाती है और बाहर निकलने का रास्ता नहीं पाती, अतएव उस घर के सभी लोग उस दूषित वायु को फिर ग्रहण करते रहते हैं।*

(२) मिलों, कारखानों और फैक्टरियों में कई-कई हजार मजदूर काम करते हैं, वे सब के सब वायु को अशुद्ध करते हैं और एक दूसरे की निकाली हुई दूषित वायु का ही पान किया करते हैं।

(३) स्वांग, तमाशों, सिनेमा, थियेटरों के हालों में जिस प्रकार अधिक संख्या में आदमी, स्त्री, बच्चे बैठकर कई-कई घंटे समय काटते हैं, वे सब के सब उतनी देर अशुद्ध वायु को ग्रहण करके अपने आपको रोगी बनाते हैं।

---

* जो लोग चिराग या आग जला कर घर के दरवाजे बंद कर देते हैं और रात में सो जाते हैं वे तो और भी गजब करते हैं। प्रायः लोग जाड़े के दिनों में अपने घरों में या सोने के कमरों में इसीलिए आग जला देते हैं जिससे उनके कमरे या मकान गर्म हो जांय और रात को जाड़ा न लगे। ऐसा करके लोग बहुत बड़ी भूल करते हैं।

(४) रेलगाड़ियों में थर्ड क्लास के डिब्बे जिस प्रकार मुसाफिरों से ठसाठस भरे होते हैं उनमें एक मिनट भी ठहरना मृत्यु का सामना करने से कम नहीं होता, उसी अवस्था में सफर करने वाले मुसाफिर घंटों बैठ बैठकर अपना समय पूरा करते हैं। और एक दूसरे की निकाली हुई दूषित वायु का ही पान करते रहते हैं।

(५) काम-काज के दिनों में ढेरों स्त्रियाँ छोटी-छोटी बंद जगहों में बैठकर काम करती हैं, गाना-बजाना करती हैं और गन्दी तथा अशुद्ध वायु द्वारा अपना शरीर रोगी बनाती हैं।

जो स्वस्थ रहना चाहते हैं, जिनको रोगी और बीमार रहने से घृणा मालूम होती है और जो वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों के यहाँ गश्त लगाने के लिए तैयार नहीं हैं, उनको चाहिए कि अपने जीवन में, अपने पारिवारिक जीवन में और अपने आश्रितों के जीवन में शुद्ध वायु का सेवन होने दें। समय, असमय, कभी आवश्यकता, विवशता में यदि अशुद्ध वायु में रहना पड़े तो तुरंत उसका प्रायश्चित्त करके अपने शरीर को पवित्र कर डालें। यह प्रायश्चित्त न तो ब्राह्मण खिलाने से होता है और न साधु, सन्यासियों की सेवा-शुश्रूषा से होता है। इसके लिए किसी स्वास्थ्यप्रद स्थान—बाग, जंगल, नदी के किनारे, पहाड़-पर्वत आदि में जाकर उस समय तक रहना होता है जब तक कि शरीर में प्रवेश

किया हुआ दूषित अंश, रक्त, या विष शुद्ध वायु से मिलकर शुद्ध, परमशुद्ध न हो जाय ! यही उसका प्रायश्चित है।

हम जहाँ जायें, जहाँ ठहरें और जहाँ पहुँचें, वहाँ सब से पहले इस बात का निश्चय कर लें कि यहाँ की वायु तो शुद्ध है न। यदि किसी प्रकार की वहाँ पर गड़बड़ी मालूम हो तो उस स्थान को, जहाँ तक सम्भव हो, तुरंत छोड़ दें। जो अपने जीवन में इस प्रकार सावधान रहेंगे वे सदा नीरोग रहेंगे।

प्रायः लोग यह बड़ी भारी भूल करते हैं कि जब कोई आदमी, स्त्री या बच्चा बीमार हो जाता है तो उसको बंद कमरे या मकान में रखते हैं और किवाड़ तथा खिड़कियाँ बंद करके वायु के आने-जाने का मार्ग रोक देते हैं। जहाँ दरवाजे या खिड़कियाँ नहीं होतीं, वहाँ लोग बड़े-बड़े कपड़ों का पर्दा छोड़ कर शुद्ध और ताजी वायु का आना रोक देते हैं। लोगों की यह अनभिज्ञता उस रोगी के लिए कितनी भयानक होती है, इस बात का उनको ज्ञान नहीं होता। सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रोगी को अथवा निरोगी को, प्रत्येक अवस्था में शुद्ध ताज़ी वायु की जरूरत है। किसी भी रोग में ताज़ी वायु परम औषधि है। उससे लाभ उठाना तो दूर, उलटा उसे रोकने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार की भूल कभी न करनी चाहिए। इस प्रकार की अपनी ही अज्ञानता के कारण अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं।

वायु में रोग-निवारण की शक्ति है

इसी परिच्छेद के प्रारम्भ में बताया जा चुका है कि यदि हम स्वच्छ और शुद्ध वायु को ही प्राप्त करें और अशुद्ध वायु से अपनी रक्षा कर सकें तो हम रोगी नहीं हो सकते। वायु में एक दूसरा प्रधान गुण यह है कि वह विकारों, रोगों और विषैले अंशों का नाश करती है। वायु के इस दूसरे गुण के द्वारा हम अपने शरीर के प्रत्येक रोग का निवारण कर सकते हैं।

वायु के इन गुणों में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता, हमको उसकी जानकारी होनी चाहिए। वायु का यह गुण किस प्रकार काम करता है, इसके लिए कुछ प्रमाण जो नीचे दिये जाते हैं, उनसे प्रत्येक व्यक्ति वायु की स्वाभाविकता को समझ सकता है—

(१) किसी भी पदार्थ को उसके सूक्ष्म तत्वों के द्वारा उड़ा देने की वायु में शक्ति है। इसको इस प्रकार समझा जा सकता है कि यदि किसी शीशी में इत्र रखा जाय और उस शीशी का मुँह खुला छोड़ दिया जाय, जिस से वायु उसमें आ जा सके तो यह निश्चय है कि वायु इत्र को उड़ाकर गायब कर देगी।

मिट्टी का तेल जिस बोतल या कनस्टर में रखा हो, उसमें यदि वायु स्पर्श करती हो तो वह उस तेल के सूक्ष्म तत्वों को

अपने साथ ले-लेकर उड़ेगी और जहाँ पर मिट्टी का तेल रखा होगा, उसके आस-पास की वायु में मिट्टी के तेल की गन्ध फैला देगी। यह गन्ध क्या है ? वही मिट्टी का तेल है जो उड़-उड़ कर गायव होता जाता है।

क्लोरोफार्म की शीशी का मुँह खोल दीजिए, वात की वात में वायु उसको उड़ा कर गायव कर देगी। यदि किसी वड़े कमरे में क्लोरोफार्म की एक शीशी खुली रख दी जाय तो उस कमरे की समस्त वायु में क्लोरोफार्म उड़ कर मिल जायगा और उस कमरे के सव आदमी वेहोश हो जायँगे।

(२) ऊनी, रेशमी या सूती कपड़े जव किसी सन्दूक में वन्द करके रख दिये जाते हैं और अधिक दिनों तक उनमें वायु नहीं लगने पाती तो वे कपड़े खराव होने लगते हैं। जिन गृहस्थों को इन वातों का ज्ञान होता है वे उन कपड़ों को सन्दूक से निकाल कर प्रायः उनको धूप और वायु देते रहते हैं, यदि ऐसा न किया जाय तो वे कपड़े गल जायँ और फिर पहनने के काम न आवें।

(३) जो अनाज किसी स्थान में वन्द रहने के कारण वहुत दिनों तक हवा नहीं पाता उसमें सड़ने के विकार और दोष उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे उसमें कीड़े पड़ जाते हैं, उस अनाज की गंध खराव होने लगती है और वे कीड़े उस अनाज को खा खाकर खोखला करने लगते हैं। चतुर किसान ऐसी अवस्था में अपने अनाज को उस वंद जगह से निकाल कर धूप और वायु

में खूब सुखाते हैं, ऐसा करने से उस अनाज में जो विकार उत्पन्न हुए थे, वे दूर हो जाते हैं और वे कीड़े भी मर जाते हैं।

(४) जो वस्त्र हम रात-दिन पहना करते हैं, उनमें शरीर का पसीना लगता रहता है और वे बदबू देने लगते हैं, यदि हम उन वस्त्रों को उतार कर धूप और वायु में सुखा डालते हैं तो उन वस्त्रों की बदबू दूर हो जाती है। यदि ऐसा न करते और उन वस्त्रों को उसी रूप में पहनते रहते, तो उनकी बदबू से हमारे शरीर में तरह-तरह के रोग उत्पन्न हो जाते।

(५) तपेदिक जैसे राजरोगों में स्वच्छ वायु का सेवन और पथ्य भोजन से बढ़कर कोई औषधि वैद्य और डाक्टर भी नहीं मानते। इसके सिवा अनेक ऐसे रोगों में जब डाक्टर हैरान हो जाते हैं, तो वे मरीजों को पहाड़ों पर जाने और वहाँ की वायु का सेवन करने की सम्मति देते हैं। ऐसा करने से वे रोगी अच्छे हो जाते हैं।

इस प्रकार के एक दो नहीं, बहुत उदाहरण हैं जिनसे यह प्रमाणित है कि वायु में विकारों के नाश करने की शक्ति है। हम अपनी अनभिज्ञता के कारण उससे लाभ न उठा सकें यह और बात है। चिकित्सा के आडम्बर से छूटकर यदि मनुष्य इन प्राकृतिक तत्वों को पहचानने लगे तो उसका बड़ा उपकार हो सकता है।

जिस प्रकार द्रव पदार्थों को स्याही सोख चूस लेता है, उसी प्रकार

हमारे शरीर के समस्त विकारों: दोषों को वायु चूस कर अपने साथ उड़ा लाती है और उसको दूसरी वायु में आकर छोड़ देती है। इसलिए हमें अपने शरीर के सम्पूर्ण अंग स्वच्छ और शुद्ध वायु में खुला रखना चाहिए जिससे वायु उनमें भली प्रकार लग सके। हमारे शरीर में जितने भी विकार उत्पन्न होते हैं, वे किसी न किसी रोग के रूप में शरीर के किसी विशेप अंग में अथवा खाल के अन्तरङ्ग भाग में उपस्थित हो जाते हैं, वायु उस अङ्ग में अथवा खाल के वहिरङ्ग भाग में जव स्पर्श करती है तो शरीर रोम-कूपों के द्वारा वह अपने सूक्ष्म तत्वों के साथ भीतर प्रवेश करती है और उन विकारों को चूस चूस कर वाहर लौटती है। जो विकार हमारे रक्त में उत्पन्न हो जाते हैं उस लाल रक्त को काला कर डालते हैं, यह रक्त-विकार अनेक सांघातिक रोगों का ही उत्पादक नहीं है, हमारे लिए प्राणघातक है। स्वच्छ और शुद्ध वायु हमारी साँस के द्वारा फेफड़ों में पहुँच कर उस रक्त के शुद्ध करने का काम करती है और उसका विकृत अंश वाहर खींच लाती है। इस प्रकार हमारे समस्त रोगों में वायु प्राकृतिक चिकित्सा का काम करती है।

जिनको इन वातों का ज्ञान नहीं होता, वे प्रायः वायु के इन गुणों से वहुत हानि उठा जाते हैं। वायु का ऊपर यह गुण तो वताया ही जा चुका है कि वह शरीर के भीतर से विकारों और रोगों के सूक्ष्म तत्वों को खींच कर वाहर की वायु में छोड़ती रहती

है। ऐसी दशा में यदि हम किसी रोगी के पास बैठते हैं, करीब लेटते हैं अथवा उसके संसर्ग में रहते हैं तो निस्सन्देह उसके रोग, वायु के द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं। दाद, खाज, हैज़ा प्लेग, तपेदिक और चेचक आदि कितने ही ऐसे रोग हैं जो सहज ही एक रोगी से दूसरे रोगी में और दूसरे से तीसरे में फैलते हैं। यह तो सभी लोग जानते ही हैं कि यदि माता को कुछ रोग होता है और यदि उसके छोटा बच्चा होता है और वह साथ लेटता है तो वह भी उसी रोग का रोगी हो जाता है। अनेक रोगों को किसी एक रोगी से दूसरे रोगी में फैलते हुए भी लोग देखते हैं और जानते हैं। परन्तु साधारण रोगों में किसी रोगी से बचने के लिए लोग नहीं रहते। परिणाम अच्छा नहीं होता। दूसरे रोगी के रोग-तत्व और रोग-कीटाणु वायु के द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश करते रहते हैं। हमें इन बातों से सावधान रहना चाहिए।

जिस घर में सूर्य का प्रकाश, धूप और वायु खुली नहीं पहुँचती, वह घर रहने के योग्य नहीं होता, उसमें नमी होती है और मनुष्यों में अनेक रोगों के पैदा करने वाले उस घर में विकार होते हैं। ऐसे स्थान में कभी न रहना चाहिए। यदि विवश होकर किसी को रहना ही पड़े और कोई चारा न हो तो कम से कम उस घर की, उस स्थान की थोड़ी बहुत शुद्धि कर लेनी चाहिए। उसका नियम यह है कि उस घर में यत्र-तत्र आग जला दे,

धूप न लगने से वहाँ की वायु में जो नमी पैदा हो गई है और उसके कारण वह वहां से बाहर नहीं होती, आग जलने से वह वायु उत्तप्त हो जावेगी और उत्तप्त होने से वायु हलकी हो जाती है, इसका फल यह होगा कि वह वायु हलकी होकर वहां से उड़ जायगी और उसके स्थान पर बाहर से कुछ शुद्ध और स्वच्छ वायु आ जावेगी।

हमारे जीवन में वायु के संख्यातीत उपयोग हैं, उन सब का एक मात्र अभिप्राय यह है कि हम खुली वायु में ही जितना रह सकें, रहने की कोशिश करें। इसी पर हमारे शरीर के अनेक सुख निर्भर हैं।

७—जल और उसके प्रयोग

वायु के पश्चात् हमारी दूसरी आवश्यकता जल की है। यह भी उन्हीं तत्वों में से एक है जिनसे हमारा शरीर बना है। इसी लिए जल के बिना हमारा जीवित रहना असम्भव है।

हमारे जीवन में जितनी ही जल की आवश्यकता है, उतना ही उसका महत्व भी है। जल का उपयोग तो सभी करते हैं परंतु उसके उपयोग में भी अंतर होता है। हमारे देश में धर्म के नाम पर बहुत बड़ा आडम्बर फैला हुआ है। यद्यपि यह आडम्बर अब बहुत कुछ कम हो गया है, फिर भी जिस परिमाण में वह आडम्बर पाया जाता है, उससे लाभ कुछ नहीं होता।

जल का स्नान हमारे जीवन का एक ऐसा नियम है जिससे हम स्वस्थ, नीरोग रह सकते हैं। हम आलस्य के कारण कहीं स्नान की क्रिया से अवहेलना न करें जिससे हम अस्वस्थ और रोगी हो जाँय, केवल इसीलिए स्नान हमारे समाज में अनिवार्य माना गया था। समाज को इस नियम और व्यवस्था पर चलते-चलते हजारों-लाखों वर्ष व्यतीत हो गए, पिछली अनेक शताब्दियों में शिक्षा का कार्य समझाने के कारण हमारे समाज में अन्धविश्वास अधिक फैल गया। इसका परिणाम यह हुआ कि सत्य बातों का हमें ज्ञान न रहा। हम तथ्य को भूल बैठे और

उसका नाम मात्र रटते रहे। स्नान हम क्यों करते हैं और हमें किस लिए करना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर देने वाले आज हमारे समाज में कितने लोग मिलेंगे? किंतु नहाने वाले, नहाता कौन नहीं है? अब प्रश्न यह है कि सर्वसाधारण में स्नान का व्यवहार जिस रूप में पाया जाता है, क्या उससे स्वास्थ्य का यथोचित लाभ होता है।

स्नान से हमारे स्वास्थ्य का क्या सम्बन्ध है? यह समझ बूझ कर स्नान नहीं किया जाता। समाज में यह अंधविश्वास काम कर रहा है कि ब्राह्मण और क्षत्री को विना स्नान किये भोजन न करना चाहिए। क्यों? इसका कोई उत्तर नहीं है! इन दो जातियों के सिवा अन्य जातियाँ विना स्नान किये भोजन क्यों कर सकती हैं और उनका स्नान करना आवश्यक क्यों नहीं है? इन प्रश्नों के कुछ उत्तर नहीं हैं। इसका कारण है कि स्नान को समाज में धार्मिक कृति समझी गयी है। समाज का यह अज्ञान समाज को अत्यंत अंधकार में रक्खे हुए है।

जल के प्रयोग

सर्वसाधारण को जानना चाहिए कि स्नान धार्मिक कृति नहीं है, उसके द्वारा परमात्मा को नहीं प्राप्त किया जा सकता। स्नान के द्वारा हम नीरोग रह सकते हैं। स्वस्थ रहने की वह एक अमूल्य व्यवस्था है किन्तु उसी अवस्था में, जब हम उसके

प्रयोगों को समझें और जल की उपयोगिता का ज्ञान उपार्जन करें।

जल के प्रयोग हमारे जीवन में कितने ही प्रकार के होते हैं। उनको समझना और उनके लिए जल कैसा होना चाहिए, यह जानना परम आवश्यक है। जल के प्रयोग साधारणतया इस प्रकार होते हैं—

(१) जल का हम स्नान करते हैं।

(२) जल हमारे पीने के काम आता है।

(३) जल से हमारा भोजन पकता है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, स्नान से हमको स्वास्थ्य प्राप्त होता है। किन्तु उसके लिए दो बातें चाहिए, जल स्वच्छ और शुद्ध होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि उस शुद्ध और स्वच्छ जल से विधिवत् स्नान किया जाय।

किस प्रकार का जल शुद्ध और उपयोगी हो सकता है, इसका विवेचन हम इसी परिच्छेद में आगे करेंगे, उसके पहले इस बात का विचार कर लेना है कि स्नान क्यों और कैसे किया जाना चाहिए। हमारे शरीर के भीतर छोटे-बड़े—अनेक प्रकार के यंत्र काम करते रहते हैं। जिस प्रकार किसी भी यंत्र के कल-पुर्जों को साफ़ करने की प्रायः नित्य आवश्यकता होती है, उसी प्रकार हमारे शारीरिक कल-पुर्जों को साफ करना अत्यंत आवश्यक होता है। यदि

ऐसा न किया जाय तो जिस प्रकार लोहे के यंत्र बिगड़ जाते हैं और कुछ दिनों में बेकार हो जाते हैं उसी प्रकार हमारे शरीर के यंत्र भी अपना काम करना बंद कर देंगे और थोड़े ही समय में बेकार हो जायँगे। इसी लिए उनको सदा-सर्वदा साफ़ होते रहना अत्यंत आवश्यक है। शरीर के यंत्रों और उनके कल-पुर्जों की सफ़ाई करना हमारे हाथ में नहीं है। प्रकृति ने ऐसा नियम बना दिया है जिससे उसकी सफ़ाई अपने आप होती रहती है और जो उसमें विकार होते हैं वे पसीने के रूप में हमारे रोम-कूप से बाहर होते हैं। यह पसीना शरीर के ऊपर आकर जम जाता है, इसी को धोने के लिए हमें स्नान की आवश्यकता होती है।

यदि स्नान न किया जाय तो इसका यह फल होगा कि जो पसीना हमारे शरीर में ऊपर आयेगा वह जम जायगा और उसके जम जाने से रोम-छिद्र बंद हो जायँगे। उस सूक्ष्म छिद्रों के बंद होने से पसीने का निकलना बन्द हो जायगा, पसीना न निकलने से भीतर जो विकार उत्पन्न होते हैं वे बाहर न निकलकर वहीं रह जायँगे, इसका फल यह होगा कि हमारे भीतरी यंत्र साफ़ न होने के कारण खराब होने लगेंगे और थोड़े ही समय में वे बेकार हो जायँगे। उनके बेकार होने से अनेक रोग उत्पन्न होंगे। इन्हीं खराबियों से रक्षा पाने के लिए स्नान किया जाता है।

सिर के ऊपर दो लोटा पानी छोड़ लेने से और धोती बदल

डालने से स्नान नहीं होता। शीतल और शुद्ध जल से खूब शरीर को मल-मल कर स्नान किया जाता है जिससे हमारा एक-एक अंग साफ़ हो जाय। शुद्ध और शीतल जल से भली प्रकार स्नान कर चुकने पर यदि इसका अनुभव करें तो हम समझ सकें कि स्नान करने से हमारा मन प्रसन्न हो जाता है, शरीर हलका हो जाता है, पाचन-शक्ति तीव्र होती है और हमारी भूख बढ़ती है। रोग, शोक और अनेक शारीरिक तथा मानसिक व्याधियां शान्त होकर हमको नवीन जीवन प्राप्त होता है। यह स्नान करने का महत्व है

स्नान करने का एक दूसरा गुण भी है जो अत्यंत महत्व-पूर्ण है। ऊपर यह बताया जा चुका है कि स्नान करके हम शरीर के भावी रोग-शोक-पूर्ण दुरवस्थाओं से त्राण पाते हैं। स्नान का दूसरा गुण यह है कि शरीर में जितने भी रोग उत्पन्न होते हैं वे केवल स्नान के द्वारा दूर किये जा सकते हैं। किसी प्रकार की औषधि की जरूरत नहीं किसी प्रकार की चिकित्सा की आवश्यकता नहीं। जल के इस दूसरे गुण का उल्लेख संसार की प्राचीन चिकित्सा में कहीं-कहीं पर कुछ पाया जाता है किन्तु इधर उसमें अनेक वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं। और यह वैज्ञानिक विवेचनाएँ चिकित्सा-शास्त्र में एक अभूत क्रान्ति उत्पन्न कर रही हैं। इन आविष्कारों का एकमात्र श्रेय जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान् मि० लुई कूने को प्राप्त हुआ है। जल

चिकित्सा पर मि० लुई कूने ने एक बड़ा और उपयोगी ग्रंथ लिखा है।*

जो जल हमारे भोजन पकाने और पीने के काम आता है, वह भी अत्यंत शुद्ध और निर्मल होना चाहिए। इन सभी बातों का सम्बन्ध हमारे स्वास्थ्य से है। हममें से अधिकांश व्यक्ति दूसरों का छुआ हुआ जल तो अपवित्र समझ कर ग्रहण नहीं करते, किन्तु प्रायः ऐसे जल का उपयोग करते हैं जो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत अनुपयोगी है। इस प्रकार के लोगों को शुद्ध अशुद्ध का ज्ञान नहीं रहा। वे केवल दूसरे के स्पर्श करने में ही अशुद्धता का अनुभव करते हैं। उनका यह अनुभव निन्यानवे प्रतिशत भ्रमात्मक होता है। वास्तव में जिसको अशुद्धता कहते हैं, उसका उन्हें ज्ञान ही नहीं होता। सर्वसाधारण को इस ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है।

जल कौनसा उपयोगी होता है ?

जल की उपयोगिता को जानने के पहले हमें जानना चाहिए

* मि० लुई कूने के इस ग्रथ का नाम New Science of Healing (आरोग्य प्राप्त करने की नवीन विद्या), संसार की प्रायः समस्त भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं। हिन्दी में इसका अनुवाद हो गया है। इसके सिवा जल चिकित्सा पर अन्य कई एक पुस्तकें लिखी गई हैं।

कि जल कहाँ-कहाँ से हमें प्राप्त होता है। इसके कितने ही स्थान हैं।

(१) हमें कुओं से जल प्राप्त होता है।

(२) नदियों से प्राप्त होता है।

(३) तालावों से प्राप्त होता है।

(४) वर्षा का जल प्राप्त होता है।

(५) झरनों का जल प्राप्त होता है।

(६) नलों का जल प्राप्त होता है।

देहातों में कुएँ ही पाये जाते हैं। उनका जल अत्यंत हितकर, शक्ति-वर्द्धक, पाचक और उपयोगी होता है। लेकिन जो कुएँ वड़े वड़े शहरों में होते हैं, उनमें यह वात नहीं होती, यह वात भली प्रकार समझ लेनी चाहिए। इसका कारण यह है कि प्रायः सभी वड़े शहरों में पानी के नलों की अधिकता हो गई है। उनके निवासी जहाँ तक सम्भव होता है और जहाँ तक मिल सकता है, उन नलों के पानी का ही प्रयोग करते हैं। ऐसी अवस्था में उन वड़े शहरों में एक तो कुएँ पाये ही नहीं जाते और यदि कोई कहीं हुआ भी, तो उसका जल अच्छा नहीं होता। इसका कारण यह है कि जिस कुएँ का पानी वरावर निकलता नहीं रहता, उसका पानी खराव हो जाता है। यह वात सभी कुओं में होती है चाहे वे शहर के कुएँ हो और चाहे देहात के। शहर के कुओं के खराव होने का कारण यही है कि उनका पानी वहुत कम

खींचा जाता है, वरन समय-असमय को छोड़ कर उन शहरों के कुओं का पानी खींचा ही नहीं जाता, जिनमें पानी के नल होते हैं।

कुओं के सम्बन्ध में यह बात भी याद रखने के लायक है कि देहात के सभी कुओं का पानी एक सा नहीं होता। प्रत्येक स्थान का अलग अलग प्रभाव होता है किसी स्थान पर कुआँ खोदने से अत्यंत मीठा, शीतल और हितकर जल निकलता है और किसी स्थान का यह प्रभाव होता है कि वहाँ पर कुआँ खोदने से जो जल निकलता है, वह खारी होता है कि और यदि खारी नहीं भी होता तो पीने से अरुचिकर, कम लाभदायक और अपने गुणों में अत्यंत साधारण होता है।

कहीं-कहीं के देहातों के कुओं का जल अधिक शक्तिवर्द्धक और लाभकर होता है। वहाँ के जल का यह प्रभाव पड़ता है कि मनुष्य साधारण भोजन करके भी अधिक हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ होता है। यह बात नलों के पानी में नहीं होती। वह कुओं के पानी की अपेक्षा अधिक हलका, अमधुर और पाचनशक्ति को निर्बल करने वाला होता है। प्रायः यह देखा जाता है कि जो लोग शहरों में रहते हैं और साधारण भोजन करते हैं, फिर भी उनको कब्ज की शिकायत रहती है। किंतु जब वे देहात चले जाते हैं और कुछ दिन भी रहने को उन्हें संयोग मिल जाता है,

तो उनकी पाचन-शक्ति तीव्र हो जाती है। उनकी भूख बढ़ जाती है और थोड़े समय में ही उनका स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है, इस अच्छाई में यद्यपि देहात की शुद्ध वायु भी बहुत कुछ काम करती है, किंतु उसके साथ ही जल का भी बहुत प्रभाव पड़ता है।

सभी लोग यह स्वीकार करेंगे कि शहर के रहने वाले देहात के निवासियों की अपेक्षा अधिक अच्छा भोजन करते हैं, फिर भी देहात के लोग जो स्वस्थ, बलवान और शरीर से पुष्ट पाये जाते हैं उसका एक मात्र कारण यही है कि उनको शहर वालों की अपेक्षा अधिक शुद्ध वायु और जल मिलता है। केवल इन दोनों के प्रभाव से वे स्वास्थ्य का सुख भोग करते हैं।

शरीर को पुष्ट बनाने, शक्ति बढ़ाने, भोजन पचाने और भूख बढ़ाने में कहीं-कहीं के कुएँ तो आश्चर्यजनक काम करते हैं। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि शहरों का दूध, घी देहातों के सादे भोजन की समता नहीं कर सकता। इसका कारण केवल देहातों का जल और वहाँ की शुद्ध वायु है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि सभी देहातों के कुएँ एक से उपयोगी और शक्ति-वर्द्धक नहीं होते। ऐसी अवस्था में किन कुओं का पानी अधिक अच्छा और किन का अनुपयोगी समझा जाय और किस आधार पर ? यह प्रश्न साधारण नहीं है।

अच्छे कुओं का जल साधारणतया पीने में रुचिकर, शीतल और मधुर मालूम होता है, इसीसे कुछ पानी की उपयोगिता का

अनुमान कर लिया जाता है, किंतु शक्तिवर्द्धक और पाचक जल की पहचान एक और भी है। प्रायः देखा जाता है कि कुछ स्थानों में कुएँ खोदने पर बहुत थोड़ी गहराई में पानी निकल आता है और कुछ स्थानों में बहुत अधिक गहराई में जल निकलता है। यहाँ पर यह बात खूब स्मरण रखना चाहिए कि जो कुएँ जितने ही गहरे होते हैं, उनका जल उतना ही रुचिकर, लाभकारक, शक्तिवर्द्धक और उपयोगी होता है।

जिन कुओं के किनारे वृक्ष होते हैं, पतझड़ के दिनों में उनकी पत्तियाँ गिरने से पानी खराब हो जाता है। इस प्रकार की बातों से और सड़ने-सड़ानेवाली चीजों के गिरने से कुओं की सदा रक्षा करनी चाहिए।

सभी बहनेवाली नदियों का जल उत्तम होता है। यह कुओं के जल की अपेक्षा हलका अवश्य होता है किन्तु स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है। नहाने के लिए नदियों का जल जितना लाभकारी है, उतना और कोई नहीं हो सकता। हाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिन छोटी छोटी नदियों का जल कम हो जाने पर प्रवाह रुक जाता है, उनके जल में कुछ विकार और दोष उत्पन्न हो जाते हैं। गर्मी के दिनों में छोटी नदियों का जल कुछ गढ्ढों में रह जाता है, इन गड्ढों का जल जानवरों के मल-मूत्र के कारण और मनुष्यों के पाखानों से बहुत अस्वास्थ्यकर हो जाता है। इस प्रकार का जल कभी काम में न लाना चाहिए।

बहनेवाली बड़ी नदियों का जल नहाने के लिए अत्यंत हित-कर होता है। स्नान करने के जितने भी तरीक़े काम में लाये जाते हैं, उन सब की अपेक्षा किसी नदी के बहते हुए जल में तैरना, भलीप्रकार स्नान करना अधिक उपयोगी है।

अपने देश की नदियों में गङ्गा और जमुना का जल बहुत स्वच्छ और स्वास्थ्यकर है। उनके इन गुणों के कारण ही हमारे पूर्वजों ने गङ्गा और जमुना के जल में स्नान करने को धार्मिक-महत्व दिया है। गङ्गा-जल पीने और नहाने दोनों कामों के लिए सब से उत्तम माना गया है। हमारे देश की नदियों में गङ्गा एक ही सब से बड़ी नदी है, इसलिए भी उसका जल स्वास्थ्यकर होना चाहिए। इसके सिवा, पार्वतीय स्थानों से निकलकर बालुका भूमि पर प्रवाहित होने के कारण गङ्गा के जल में अद्भुत निर्मलता और शुद्धता पायी जाती है।

तालावों का जल अच्छा नहीं होता। जो तालाब गर्मी के दिनों में सूखे पड़े रहते हैं और उनमें गाँवों के लोग कूड़ा-कर्कट फेंका करते हैं, वर्षा होने पर उन छोटे-छोटे तालावों में पानी भर जाता है, उनका जल तो बिल्कुल ही ख़राब होता है। वर्षा के बाद ही उनका जल फिर कम हो जाता है और उनमें सड़नेवाली चीज़ें पड़ने के कारण इतनी गन्दगी उत्पन्न हो जाती है जिसका प्रयोग करने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। हाँ, जो तालाब काफ़ी बड़े-बड़े होते हैं, और उनमें जल भी खूब होता है,

इसके साथ वे सड़नेवाली चीज़ों से बचाये जाते हैं, उनका जल कुछ अच्छा होता है। उनके जल में स्नान करने से कोई विशेष हानि नहीं होती। उनके बँधे हुए पानी में अधिक लोगों के नहाने से विकार तो ज़रूर ही उसके जल में फैलते हैं लेकिन उन विकारों से उसका जल सूर्य की धूप और वायु के स्पर्श होने के कारण, शुद्ध होता रहता है। ऐसी अवस्था में इनमें स्नान किया जा सकता है। लेकिन नहाने के लिए उनकी अपेक्षा कुओं का जल और कुओं से भी अधिक उपयोगी बहनेवाली नदियों का जल होता है।

वर्षा का जल स्वयं शुद्ध, स्वास्थ्यकर और उपयोगी होता है, लेकिन भूमि पर पड़ने से और मिट्टी, कूड़ा तथा बदबूदार पदार्थों से मिलने के कारण खराब हो जाता है। यदि वर्षा का पानी ज़मीन पर पड़ने के पहले ही किसी शुद्ध और साफ़ बर्तन में इकट्ठा कर लिया जाय तो वह स्वास्थ्यकर होता है।

झरने पहाड़ों पर होते हैं और उनसे जो जल निकलता है, वह पत्थरों पर बहने के कारण सुन्दर, स्वच्छ और हितकारी होता है। नदियों के जल की भाँति झरनों का जल भी पीने में हलका मालूम होता है, परन्तु पाचक और शरीर को आरोग्य रखनेवाला होता है।

नलों का जल कुछ अधिक विकारी तो नहीं होता। कुओं की अपेक्षा भोजन को पचाने में वह निर्मल होता है। यही कारण है कि शहर में रहने वालों को हाजमे की शिकायत रहती है।

पीने और नहाने में जल का उपयोग

जल के पीने और नहाने के सम्बन्ध में दो बातों का यहाँ पर कुछ उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक है। जल का अधिक शीतल होना और अधिक उत्तप्त होना. उसकी स्वाभाविकता के विरुद्ध है। गर्मी के दिनों में पानी जो कुछ उष्ण हो जाता है, वह स्वाभाविक होता है और शीतकाल में जल जो अधिक शीत हो है, उसमें स्वाभाविकता होती है। परंतु जल की इस स्वाभाविकता को नष्ट करके जो लोग शीतकाल में जल को उष्ण करके पीने और नहाने के काम में लाते हैं, उससे स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। और ग्रीष्मकाल में जो लोग वर्फ के द्वारा जल को अधिक शीतल करके पीते हैं, वे भी हानि ही उठाते हैं। वे दोनों ही बातें प्रकृति के विरुद्ध हैं।

स्नान सदा शीतल पानी से ही लाभकारक होता है। शरीर के प्रत्येक अंग को स्नान से जो लाभ पहुँचता है, वह केवल शीतल जल से। इसी प्रकार पीने के काम में भी स्वाभाविक जल का ही प्रयोग करें। वर्फ़ के पानी से दाँतों और पाचन-शक्ति को विशेप रूप से हानि पहुँचती है। अपने जीवन से हम यदि आडम्बर को भूल जायँ तो प्रकृति की सत्ता हमको सदा समय-समय पर काम करती हुई मिलेगी जिससे हम अपनी अनुकूलता को अनुभव करेंगे। इसी आधार पर हम देख सकते हैं कि ग्रीष्मकाल

में जब आग बरसती है तो कुओं का जल कितना शीतल सुमधुर होता है ! और शीतकाल में जब बर्फ गिरती है तो उन्हीं कुओं का जल किस प्रकार उष्ण प्राप्त होता है ! यही प्रकृति है—यही स्वाभाविकता है !! गर्मी के दिनों में न तो कोई कुओं में बर्फ घोलने जाता है और न जाड़े के दिनों में उनमें कोई आग जलाने जाता है। किंतु मनुष्य तो आडम्बरों का पुजारी है ! उसने स्वाभाविकता खो दी है ! इसीलिए आज वह सुख, सौन्दर्य और स्वास्थ्य का दुखिया है !!

चिकित्सा के रूप में जल

इस परिच्छेद के प्रारंभ में यह बताया जा चुका है कि शरीर के जिन रोगों को रो-गाकर वैद्य, हकीम और डाक्टर अच्छा करते थे, जल-चिकित्सा के द्वारा वे सहज ही दूर किये जाते हैं, किंतु यहाँ पर संक्षेप में कुछ उन बातों का उल्लेख करना है जिनमें सर्वसाधारण जल के द्वारा कुछ अत्यंत आवश्यक व्याधियों में बड़ी आसानी से लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

यदि पाचन शक्ति की निर्बलता है, टट्टी साफ़ नहीं होती तो सबेरे सोकर उठने पर, टट्टी जाने के पूर्व ताजे, शीतल जल को पीना चाहिए। यदि टट्टी की शिकायत पुरानी नहीं है तब तो एक ही दिन में लाभ होगा और पेट की सफ़ाई हो जायगी। यदि कब्ज की शिकायत पुरानी है तो उसके लिए लगातार कुछ दिन पानी पीने का क्रम जारी रखने से लाभ होगा।

यदि भूख नहीं लगती और इसका कारण मेदे की खराबी है तो पारिश्रमिक काम करना, अधिक चलना आरंभ करने के साथ खाना खाने के आध घंटा पहले एक-दो वार शीतल जल पीना चाहिए। इस प्रकार का नियम करने से एक ही दो दिन में लाभ मालूम होगा।

यदि पेट साफ़ नहीं रहता, खुल कर पाख़ाना नहीं आता और पेट भारी रहता है और जो भोजन किया जाता है, उससे बनने वाला मल पेट में सूख जाता है, तो चाहिए कि खाना खाने के पहले और पीछे, एक-एक डेढ़-डेढ़ घंटे पर शीतल और ताज़े जल का पीना आरंभ करें। इससे पेट की खुश्की दूर हो जायगी और पाख़ाना खुल कर आयेगा।

नाक में किसी प्रकार का रोग हो, गर्मी से पपड़ी जमती हो, खुश्क़ी से तकलीफ़ हो, इसके सिवा मस्तिष्क निर्बल हो, सिर गर्म रहता हो, मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ अन्य कष्ट हों तो नाक के द्वारा स्वच्छ और ताज़ा जल पीने का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास न होने के कारण पहले कुछ अटपट-सा मालूम होगा, किंतु कुछ ही दिनों के नियम से आदत पड़ जायगी। इसके लिए सुबह सोकर उठने पर शौच के पश्चात् कुल्ला दातून कर चुकने पर, स्नान करने पर तो अवश्य ही करना चाहिए। दिन में तीन चार वार करने से वड़ा लाभ होता है।

चोटों में जल का प्रयोग बहुत लाभ करता है। चोटें दो

प्रकार की होती हैं, (१) जिसमें चोट लग जाती है परन्तु खाल फटती नहीं है गुल्ला, पड़ जाता है अथवा सूजन हो जाती और कभी-कभी नीलापन आ जाता है। इसके लिए शीतल जल अत्यंत हितकारक है। साफ़ कपड़े की गद्दी बना कर उस सूजन पर बाँधे और उसको शीतल पानी से बार-बार तर रखे। इस बात का ध्यान रहे कि वह सूखने न पावे।

(२) जिसमें चोट लगकर खाल फट जाती है और घाव हो जाता है, इसमें भी जल की ही जरूरत होती है, किंतु जल में किसी प्रकार का विकार न हो अन्यथा इस से लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है। अतएव ताज़े जल को बहुत साफ़ बर्तन में उबलने को चढ़ा देना चाहिए। जब पानी उबलने लगे तो उसी में कुछ साफ़ रुई या कपड़ा छोड़ देना चाहिए। कुछ देर तक पानी उबल चुकने पर उतार कर ठंढा कर लेना चाहिए। जब बहुत साधारण गुन गुना रह जाय तो उस जल से घाव को इस प्रकार धोना चाहिए जिससे घाव में किसी प्रकार की मिट्टी अथवा और कुछ न रह जाय। उसके पश्चात् उसी रुई को अथवा उस कपड़े की गद्दी को उसी पर बाँध देना चाहिए और थोड़ी-थोड़ी देर में उसे भिगोते रहना चाहिए। इससे बहुत शीघ्र और आसानी से चोट अच्छी हो जायगी।

———

८—भोजन की समस्या

भोजन का प्रश्न मानव समाज में अत्यन्त जटिल हो गया है। भोजन-सम्बन्धी बातें जितनी ही साधारण और महत्वहीन समझी जाती हैं, वे उतनी ही असाधारण और महत्वपूर्ण हैं। यदि यह प्रश्न किसी प्रकार सुलझ जाय तो समाज के स्वस्थ और नीरोग रहने का बहुत अंशों में मार्ग खुलजाय। भोजन की समस्या साधारण नहीं है। स्वास्थ्य और आरोग्य का बहुत बड़ा भाग इसी भोजन की वास्तविकता और उपयोगिता पर निर्भर है।

जिन्हें अपने स्वास्थ्य का ख्याल है और जो नीरोग रहकर अपना जीवन बिताना चाहते हैं, उनको चाहिए कि वे भोजन के सम्बन्ध में खूब जानकारी प्राप्त करें। इसके सम्बन्ध में दो बातें प्रधान हैं और दोनों बातें जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि भोजन ही हमारा जीवन है। यदि हमको भोजन न मिले तो हम जिन्दा नहीं रह सकते। दूसरी बात यह है कि जो भोजन हमारे लिए इतना उपयोगी और महत्वपूर्ण है वही भोजन हमारे जीवन की बीमारियों का कारण होता है और बीमारी से ही हमारी मृत्यु होती है। ये दोनों ही गुण भोजन में विद्यमान हैं। इस परिच्छेद में हम

यही बताना चाहते हैं कि किस प्रकार हम भोजन के सुधा-समान गुण को प्राप्त करके बड़ी से बड़ी अवस्था तक जीवित रह सकते हैं और किस प्रकार की असावधानी तथा भूलें करने से सदा सर्वदा बीमार रहकर, समय के पूर्व ही मर सकते हैं।

भोजन सम्बन्धी दो प्रधान भूलें

भोजन के जिन दो गुणों को ऊपर बताया गया है, वे अत्यन्त स्वाभाविक हैं। उनके सम्बन्ध में कुछ भी कहने के पूर्व एक छोटा सा उदाहरण उसको स्पष्ट करने में अधिक सहायता करेगा। हम अपने घरों में सरसों अथवा रेंड़ी का तेल दीपक में जलते रोज़ देखते हैं। हम जानते हैं कि उस दीपक में जबतक तेल रहता है तबतक वह दीपक बराबर जलता है और जब उसका तेल समाप्त हो जाता है तो वह दीपक बुझ जाता है। इस बात से स्पष्ट प्रकट होता है कि तेलही दीपक का जीवन है। यह तेल न रहे तो दीपक एक घंटा भी नहीं जल सकता। किंतु यह भी हम नित्य ही देखते हैं कि यदि उस दीपक की जलती हुई बत्ती उसी दीपक के तेल में डुबोदें तो बत्ती तुरन्त ही बुझ जाती है। इस से हम समझ सकते हैं कि वही तेल जो उस दीपक का जीवन था, उसके नाश का कारण हो गया!

ठीक यही अवस्था हमारे शरीर की है। भोजन को ही प्राप्त कर हमारा शरीर शक्ति प्राप्त करता है और भोजन का दुरुपयोग

ही उसके लिए विष का काम देता है। जो भोजन हम पचा सकते हैं और जितना पचा सकते हैं, वह हमारे लिए अमृत है। किंतु भोजन के जिन पदार्थों को हम पचा नहीं सकते और जितना नहीं पचा सकते, वही दोनों बातें हमारे लिए खराबी का कारण हो जाती हैं। यहाँ पर दो बातें भोजन के सम्बन्ध में स्पष्ट हो जाती हैं। भोजन के जिन पदार्थों को हम पचा सकें और जितना परिमाण हम पचासकें, वही हमारे लिए भोजन है और हमारे शरीर के लिए अमृत है, किंतु जो न पचा सकें अथवा जितना परिमाण हम न पचा सकें, वही विष है।

प्रकृति का कोई भी जीव अपने भोज्य पदार्थों को ही खाता है और जितनी भूख होती है, जितना वह पचा सकता है, उतना ही वह खाता है। किंतु ये दोनों ही बातें मानव जीवन में विरुद्ध पैदा हो गई हैं। हम भोजन के उन पदार्थों को भी अपना भोजन समझते हैं जो हमारे लिए भोजन नहीं हो सकते। मांस मनुष्य का भोजन नहीं है। इस विषय पर संसार के साहित्य में न जाने कितना लिखा जा चुका है। हिन्दी में भी ऐसी कितनी ही पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं जिनमें यह बताया गया है कि मनुष्य का भोजन माँस नहीं है, मादक पदार्थ नहीं हैं। मनुष्य का भोजन फल, वनस्पति और वानस्पतिक पदार्थ हैं। फिर भी मनुष्यों में मांस और मादक पदार्थों का सेवन खूब पाया जाता है। मनुष्यों की भाँति पालतू पशुओं में

गाय, बैल, भैंस, घोड़ा आदि का भोजन माँस और मादक पदार्थ नहीं हैं, उनके सामने माँस जैसी वस्तुएँ रखी जांय, तो वे सूँघ कर ही छोड़ देंगे, किन्तु यदि उनके सामने कोई रोटी का टुकड़ा डाल देगा वे तुरन्त खा जांयगे। यही अवस्था संसार के समस्त जीवों की है। जिसका जो भोजन है, वे उन्हीं पदार्थों को खा सकते हैं, किन्तु मनुष्यों में यह बात नहीं रह गई, मनुष्य ने प्रकृति के दिये हुए इस ज्ञान को नष्ट कर दिया है। इसीलिए आज मनुष्यों में भाँति भाँति की बीमारियाँ हैं—भाँति भाँति के रोग हैं जिनसे उनको अपने जीवन में कभी भी चैन नहीं मिलता।

दूसरी बात यह है कि एक बार का खाया हुआ, हमारे पेट में ज्यों का त्यों रखा रहता है, वह पचने नहीं पाता, हम दूसरी खुराक चढ़ा लेते हैं। हम यह जानते हैं कि हमको भूख नहीं है। हमारा पेट खाली नहीं है किन्तु फिर भी हम दूसरी बार फिर अनाप-शनाप भोजन खा जाते हैं। हमारी इन आदतों का ठीक वही परिणाम होता है जो परिणाम दीपक की बत्ती को तेल में डुबो देने की, ऊपर बताया जा चुका है। दीपक की बत्ती जितने तेल को पचा सकती है, उतना तेल तो उसके लिए प्राण है, अमृत है, किंतु जब तेल की मात्रा इतनी अधिक हो गई, जितना वह पचा नहीं सकती, तो वही उसके विनाश का कारण हो जाता है। संसार के शरीर-शास्त्र के बड़े-बड़े विद्वानों ने यह

वात वताई है कि हमारे जीवन में जितने भी रोग पैदा होते हैं, वे सव के सव पेट की खरावी से पैदा होते हैं। पेट की खरावी के दो कारण हैं, एक तो अभोज्य भोजन और दूसरे अपच। जो भोजन मनुष्य का भोजन नहीं है, इसीलिए प्रकृति ने उसको पचाने योग्य मनुष्य के पेट के यंत्रों का निर्माण नहीं किया, किंतु फिर भी जव मनुष्य उसको अनेक उपाय करके खाता है तो वह समयानुकूल अपना फल देता है। विषय-विस्तार के भय से हम यहाँ पर अधिक उसकी मीमांसा न करेंगे। अनेक इस प्रकार की पुस्तकें लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं जिनमें वताया गया है कि इस प्रकार के अयोग्य पदार्थ खाने और न खाने वाले मनुष्यों के जीवन में स्वास्थ्य सम्वन्धी क्या-क्या अंतर पाये जाते हैं। हम यहाँ पर अधिक सूक्ष्म वातों में न जाकर यह वता देना चाहते हैं कि उसके दो भीषण परिणाम होते हैं, भाँति भाँति के अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और इस प्रकार के मनुष्यों की मृत्यु शीघ्र ही—अर्थात् समय से पूर्व ही होती है।

भोजन से कैसे स्वास्थ्य मिलता है

भोजन तो सभी करते हैं, किंतु सभी को भोजन से एक सा लाभ होता है, ऐसी वात नहीं है। संसार में अपनी आँखों से हम नित्य ही देखते हैं कि कोई दुर्वल है, कोई सवल, कोई रोगी

है और कोई नीरोग। इस प्रकार की बातें जो हम सदा से देखते चले आये हैं, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भोजन से जो कुछ हमारे शरीर को प्राप्ति होती है, वह सब को समान-रूप में नहीं मिलती। ऐसी अवस्था में हमारे लिए यह जानने योग्य बात पैदा होती है कि भोजन से हमें क्या मिलना चाहिए और जो कुछ मिलना चाहिए वह किसे मिलता है किसे नहीं मिलता।

पहले यह बताया जा चुका है कि भोजन ही हमारा जीवन है। यदि भोजन कुछ दिनों तक हमें न मिले तो हम जीवित नहीं रह सकते। हमको जानना चाहिए कि हमारे शरीर में जो शक्ति है, जो पुरुषार्थ है वह हमको हमारे भोजनों से प्राप्त होता है। भोजन से जो तत्व हमारे शरीर को प्राप्त होते हैं, उनको प्राप्त करने के लिए हमारे शरीर के भीतर अनेक क्रियायें होती हैं। हमारे शरीर की बनावट ठीक घड़ी के यंत्र तथा रेलगाड़ी के इंजिन के समान है। जिन्होंने घड़ी का यंत्र अथवा रेलगाड़ी का इंजिन देखा है वे जानते हैं कि उसके भीतर छोटे और बड़े कितने प्रकार के यंत्र काम करते रहते हैं। हमारे शरीर के यंत्र, इन यंत्रों से भी सूक्ष्म और अद्भुत काम करने वाले हैं।

भोजन से जो हमारे शरीर को स्वास्थ्य, बल और पुरुषार्थ प्राप्त होता है, वह केवल भोजन कर लेने के बाद ही समाप्त नहीं हो जाता और न इतने ही से वे तत्व हमको प्राप्त हो जाते हैं।

गेहूँ पीसने की जो चक्की होती है, केवल उसमें गेहूँ छोड़ देने से ही आटा नहीं तैयार हो जाता। आटा तैयार करने के लिए चक्की को चलाना भी पड़ता है। यदि चक्की न चलाई जाय तो गेहूँ ज्यों का त्यों रखा रहेगा। इसी प्रकार भोजन करके भोजन के पदार्थों को हम उस यंत्र में केवल पहुँचा देते हैं जिसमें जाकर उसकी अन्य क्रियायें आरंभ हो जाती हैं। हमारे पेट में जो यंत्र हैं वे छोटे और बड़े सभी अपना-अपना काम करते हैं। उन्हीं सब के द्वारा भोजन से पदार्थों के तत्व खींचे जाते हैं। यहाँ पर यह समझ लेना अत्यंत आवश्यक है कि पेट में पहुँच कर भोजन से कौन-कौन से तत्व और किस प्रकार तैयार होते हैं।

हम जो खाना खाते हैं, वह पेट में जाकर उस भाग में पहुँचता है जिसको आमाशय कहते हैं। आमाशय में वह खाना पकता है। जितना ही भाग उसका पकता जाता है, उतना भाग पेट की दूसरी थैली में—जिसको पक्वाशय कहते हैं—चला जाता है। यहाँ पर उसका समस्त विकार अलग किया जाता है। भोजन में जितना पोष्य तत्व होता है वह रसके रूप में, पक्वाशय में अलग हो जाता है और जो विकार अलग होता है वह मल और मूत्र के रूप में मलाशय और मूत्राशय में चला जाता है। इस मल और मूत्र के रूप में विकार अलग होने पर, उस भोजन से रस तैयार होता है, और वह रुधिर में मिल जाता है, इस प्रकार रुधिर में मिला हुआ वह रस, जठराग्नि के द्वारा फिर पकता है। उस रस

में जो विकार होता है, जठराग्नि के द्वारा पककर उसका विकार अलग होता है, यह विकार कफ थूक और नेत्रों के विकृत जल के रूप में पृथक हो अपने-अपने मार्ग से, शरीर से बाहर हो जाता है। रस से जब ये विकार पृथक हो जाते हैं तो शेष बचा हुआ अंश रुधिर बन जाता है। रुधिर बनने के पहले उसके दो भाग हो जाते हैं, सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म भाग रुधिर बन जाता है और स्थूल भाग जठराग्नि के द्वारा फिर पकता है और उसमें जो विकार शेष रहता है, वह अलग होता है। शरीर में पित्त का जो अंश होता है, वह इस स्थूल भाग का विकार है। उस स्थूल भाग से पित्त के पृथक हो जाने पर, उसके दो भाग हो जाते हैं, सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म भाग मांस बन जाता है और स्थूल भाग फिर पकता है। इस बार पकने से उसका विकार फिर अलग होता है जो शरीर के सूक्ष्म अवयव कान आदि के द्वारा बाहर निकलता है और शेष भाग चरबी बन जाता है। यह चरबी फिर पकती है और पक कर उसमें जो मल तथा विकार होता है तो अलग होता है। शरीर का पसीना, लिंगेंद्रिय का लुआबदार पानी, जिह्वा और दाँतों का मैल चरबी का विकार कहलाता है। इन विकारों के पृथक हो जाने पर शेष अंग के दो भाग हो जाते हैं, शुद्ध भाग से हड्डियाँ बनती और पुष्ट होती हैं, दूसरा अशुद्ध भाग फिर पकता है और उसमें जो विकार रह जाता है वह मल पक कर शरीर के रोम, बालों और नाखूनों के मार्ग से बाहर

होता है। इस विकार और मल के पृथक हो जाने पर शेप भाग मज्जा बन जाता है। इसके पश्चात् मज्जा पकती है। पकने पर उसका विकार नाक और आँख द्वारा बाहर होता है। इस विकार के पृथक होजाने पर जो अंश शेष रह जाता है, वह वीर्य बन जाता है। इस प्रकार उस भोजन से तीन प्रधान तत्व शरीर को प्राप्त होते हैं, रक्त, माँस और वीर्य। यही तीनों बातें हमारे शरीर का स्वास्थ्य, शक्ति और पुरुषार्थ हैं।

प्रत्येक मनुष्य भोजन करता है, भोजन से ये तीन तत्व जो शरीर को प्राप्त होते हैं, वे सभी को मिलने चाहिए, किंतु सभी को नहीं मिलते। इसका कारण है। भोजन से इन तत्वों को प्राप्त करने के लिए जो क्रियायें होती हैं, वे शरीर के भीतर अपने आप नहीं हुआ करतीं। जिस प्रकार चक्की न चलने से उसमें डाला हुआ गेहूँ ज्यों का त्यों रखा रहता है, उसी प्रकार शरीर के भीतर यदि यंत्र काम न करें तो पेट में गया हुआ भोजन रखा रहेगा। शरीर के भीतरी यंत्रों का काम करना हमारे शारीरिक परिश्रम पर निर्भर है। जो मनुष्य जितना ही शारीरिक परिश्रम करता है, उसके शरीर के भीतरी यंत्र उतना ही अधिक काम करते हैं और जो जितना कम शारीरिक परिश्रम करता है, उसके उतना ही कम काम करते हैं। यही कारण है कि परिश्रमी मनुष्य को भूख अधिक लगती है क्योंकि उसके भीतरी यंत्र अपना काम करके भोजन से पोष्य तत्व प्राप्त कर लेते हैं, मल और विकार

पृथक कर, शरीर के भिन्न-भिन्न भागों से जुदा कर देते हैं और पेट के खाली होते ही भूख का अनुभव होता है।

जो लोग परिश्रम नहीं करते, उनका पेट में गया हुआ भोजन रखा रहता है। उसका ठीक ठीक पाचन नहीं होता, आमाशय में एक वार का किया हुआ भोजन पड़ा होता है, भूख नहीं लगती। भूख न लगने का कारण है आमाशय का काम न करना और पेट का खाली न होना। मनुष्य जो शारीरिक परिश्रम करता है, उसके द्वारा आमाशय में अग्नि उत्पन्न होती है। उसमें वह भोजन जो आमाशय में पहुँचता है और पक कर पक्काशय में चला जाता है, यहां से उसकी अन्यान्य क्रियायें आरंभ हो जाती हैं, जैसा कि ऊपर वताया गया है। जो परिश्रम नहीं करते, उनका आमाशय काम नहीं करता। जो खाना खाया जाता है, वह उसी में पड़ा हुआ सड़ा करता है। उस पर भी वड़ी भारी भूल यह होती है कि बिना भूख के ही खाना खा लिया जाता है। जो लोग शारीरिक परिश्रम नहीं करते, और बैठे-बैठे या लेटे-लेटे समय काटते हैं, उन्हीं की यह दशा होती है कि भूख नहीं लगती, किन्तु भोजन का समय आने पर फिर उनको खाना खा लेना पड़ता है। रोज़ ही इस प्रकार की बातें देखी जाती हैं कि खाने वाला इनकार करता है, भूख नहीं है, किन्तु खिलाने वाले, आदर-पूर्वक कहते हैं, "तो भी कुछ थोड़ा बहुत खा लीजिए।"

"नहीं, भूख बिल्कुल नहीं है।"

"भूख चौके में आने पर अपने आप लग जायगी। अधिक न सही, थोड़ी ही सही। कुछ तो आकर खाही लीजिए।"

इस प्रकार इच्छा-पूर्वक अथवा अनिच्छा-पूर्वक खाना आरंभ हो जाता है। यह दशा या तो बड़े आदमियों, धनिकों और सम्पत्तिशालियों के घरों में होती है अथवा किसी घर में आये हुए मेहमान की होती है। दोनों ही दशायें बड़ी भयानक हैं। बिना किसी सन्देह के इस प्रकार के मनुष्य बीमार होते हैं। खाये हुए खाने से पोष्य तत्व उसी दशा में प्राप्त होते हैं जब खाने वाला शारीरिक परिश्रमी होता है, अथवा भोजन शरीर में रोग और बीमारी उत्पन्न करने के सिवा और कुछ काम नहीं करता। यही कारण होता है कि जो लोग शारीरिक परिश्रम नहीं करते, वे अधिक से अधिक पुष्टिकारक खाना खाते हुए भी स्वस्थ और शक्तिशाली नहीं होते। इसके अतिरिक्त उनको अपने जीवन-भर औषधियों का आश्रय लेना पड़ता है।

भोजन के सम्बन्ध में जानने योग्य बातें

भोजन के सम्बन्ध में सर्वसाधारण की उदासीनता अत्यंत हानिकारक है। भोजन ही हमारा जीवन है और वह जीवन उसी समय तक है जब तक उसका उचित और आवश्यक उपयोग किया जाता है। थोड़ी सी भूल और अनभिज्ञता भी हमारे रोग का कारण बन जाती है। इसलिये भोजन की समस्या साधारण नहीं, अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि वास्तव में विचार किया जाय,

तो हमारे जीवन में इतना महत्वपूर्ण और दूसरा कोई काम नहीं है जितना भोजन का प्रश्न है। जीवन का सारा महत्व हमारे स्वास्थ्य पर निर्भर है और यह स्वास्थ्य भोजन पर आश्रित है। इसलिए उसके सम्बन्ध में जितनी सूक्ष्म बातों की हमें जानकारी हो, उतना ही हमारे लिए अच्छा है। इसके सिवा संसार में भोजन का प्रश्न दिन पर दिन अत्यन्त कौतूहलपूर्ण होता जाता है। इसके सम्बन्ध में आजतक जितनी बातें जानी गई हैं उनके अतिरिक्त नित्य नये अनुभव देखने में आते हैं, संसार में बड़े-बड़े विद्वानों का ध्यान इस ओर अत्यधिक आकृष्ट हो रहा है। भोजन-सम्बन्धी जितनी महत्वपूर्ण बातें जानी जा सकें, उतनी जानने के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं। इसलिए कब कहाँ कौन से नवीन अनुभव किये गये और किन बातों, नवीन आविष्कारों से यह प्रश्न और अधिक सुलभ बनाया गया, यह सब उसी समय जानने में आ सकता है जब हम उसकी खोज में रहें।

मनुष्य का भोजन

हमारे भोजन के पदार्थ क्या हैं इसके सम्बन्ध में इस परिच्छेद के आरंभ में कुछ लिखा गया है। शरीर-शास्त्र के विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि मनुष्य के शरीर की बनावट उसके फल-भोजी होने का सब से बड़ा प्रमाण रखती है। मनुष्य का

सारा शरीर-निर्माण ठीक उसी ढंग का है जिस प्रकार बन्दर का। विशेष कर पाचन-क्रिया के यंत्र और मुख तथा दाँतों की बनावट इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि मनुष्य मांस-भोजी नहीं है, वह फल-भोजी है। इसके सम्बन्ध में अबतक बहुत से ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। जितनी भी छानबीन अबतक की गई है, सब प्रकार यह स्वीकार किया जाता है कि मनुष्य का वास्तविक भोजन फल है।

फलों के पश्चात् शाक-सब्जी और वानस्पतिक पदार्थ हैं। गेहूँ, जौ, चना, चावल आदि वानस्पतिक पदार्थ हैं। हमारे स्वास्थ्य के लिए सभी प्रकार के फल, कच्चे और पक्के तथा हरे शाक बहुत उपयोगी हैं। इसके पश्चात् अनाज है। अनाज भी वानस्पतिक फल ही है। इसके विषय में मूल सिद्धान्त यही है कि जिन पदार्थों को हम बिना आग के पकाये खा सकें, वे ही वास्तव में हमारे भोजन के पदार्थ हैं, कच्चे फलों के सिवा, जो पदार्थ सूर्य की गर्मी में पके हैं, उतना ही पकना पर्याप्त है। आग पर पकाने से उन चीजों का स्वाभाविक पोष्य तत्व जल जाता है। रोटी, दाल, शाक-सब्जी को आग में बनाने और उसके खाने का अभ्यास करके मनुष्य अपनी प्रकृति के विरुद्ध हो गया है। कितने ही विद्वानों और महापुरुषों ने बिना आग पर पकाये भोजन खाने का अभ्यास किया है और उन्होंने उसमें अनेक गुणों को अनुभव किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि बिना आग में जलाये और भूने

भोजन किये जाँय तो अधिक उपयोगी, स्वास्थ्यवर्द्धक और शक्ति देने वाले हो सकते हैं, किंतु ऐसा करने के लिए सावधानी के साथ अभ्यास डालने की आवश्यकता होगी।

शहरों का जीवन हमारे स्वास्थ्य का परम शत्रु हो रहा है। अनेक ऐसी बातें पैदा होती जाती हैं जिनसे हमारे स्वास्थ्य की लगातार हानि होती जाती है। आटा पीसने की कल जब से चली है, तब से नागरिकों के स्वास्थ्य को और भी अधिक धक्का लगा है। पनचक्की का पिसा हुआ आटा पीसने में जल जाता है, उससे उसकी जीवन-शक्ति, पोष्य शक्ति मारी जाती है। हाथ-चक्की से पिसे हुए आटे में तो स्वादु, माधुर्य होगा, पर पनचक्की के आटे में किसी प्रकार नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, स्वास्थ्य और शक्ति-वर्द्धन के लिए हाथ-चक्की का आटा लाभप्रद और पनचक्की का आटा हानिकारक होता है। इसकी परीक्षा करने के लिए यदि किन्हीं दो मनुष्यों का उपयोग किया जाय, दोनों ही मनुष्य अच्छे स्वास्थ्य-सम्पन्न होने चाहिए। एक को पनचक्की के आटे की और दूसरे को हाथचक्की के आटे की रोटियाँ दी जाँय, चार-पाँच महीने में पनचक्की के आटे की रोटी खाने वाला मनुष्य अस्वस्थ और विभिन्न रोगों का रोगी और हाथ-चक्की के आटे की रोटियाँ खाने वाला मनुष्य स्वस्थ और नीरोग दिखाई देगा। डाक्टरों ने कुत्तों और चूहों में दोनों प्रकार के आटे की परीक्षा की है। जिसे कल के पिसे हुए आटे की रोटी दी

जाती थी, कुछ दिनों के पश्चात् वह कुत्ता और चूहा दुबला और रोगी हो गया, परन्तु जिस कुत्ते और चूहे को हाथ-चक्की की रोटियाँ दी जाती थीं, वे दोनों स्वस्थ्य और नीरोग बने रहे। पनचक्की के आटे की खराबी के सम्बन्ध में कदाचित् किसी को सन्देह नहीं हो सकता, किन्तु शहरों में लाखों की आबादी में कितने ऐसे स्त्री-पुरुष मिलेंगे, जो हाथचक्की का आटा खाते हों ? इसीका फल है कि शहरों का स्वास्थ्य और आरोग्य दिन पर दिन लोप होता जाता है।

भोजन करने का ढंग

जब हम खाना खायें तो हमें चाहिए कि खाते हुए हम किसी प्रकार की जल्दी न करें। कुछ माताएं बच्चों को जल्दी भोजन करने का अभ्यास कराती हैं। उनका यह काम अत्यन्त मूर्खता का होता है। खाना जितना ही धीरे धीरे और चबा चबाकर खाया जाता है, उतनाही वह पचने के योग्य और रुचिकारक बन जाता है। मुँह में कौर डालकर उसको इतनी देर तक चबाना चाहिए कि उसमें लस पैदा हो जाय और लुआबदार बनकर अपने आप पेट में चला जाय। ऐसा करने पर भोजन में एक प्रकार की स्वाभाविक मिठास पैदा हो जाती है। पाचन-क्रिया को इस प्रकार के भोजन से बड़ी सहायता मिलती है और इस प्रकार खाया हुआ खाना शरीर को अद्भुत शक्ति और स्वास्थ्य पहुँचाता है।

६—जल-चिकित्सा

जल में जो अद्भुत गुण हैं, उनको शरीर-शास्त्र के बड़े-बड़े पण्डितों ने स्वीकार किया है और यह बताया है कि जल के नियमानुसार प्रयोग से शरीर में होने वाले सभी प्रकार के रोग तो नष्ट हो ही सकते हैं, जल में एक विशेष बात यह है कि वह हमारे शरीर को नवीन जीवन-शक्ति प्रदान करने में अत्यंत उपयोगी प्रमाणित हुआ है। जिन नियमानुसार प्रयोगों से हमारे शरीर को यह लाभ पहुँचता है, वे क्या हैं और किस प्रकार उनके उपयोग होते हैं, इस परिच्छेद में जल की उन सभी क्रियाओं और उपक्रियाओं का उल्लेख होगा, जिनको संसार के माननीय विद्वानों ने चिकित्सा-विज्ञान के रूप में निर्धारित किया है।

शरीर के भिन्न-भिन्न रोगों में जल की चिकित्सा का विवेचन करने के पहले यह बता देना अत्यंत आवश्यक है कि जल की चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा है, अतएव रोगी के लिए प्राकृतिक भोजन की व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है, यदि भोजन की व्यवस्था जल चिकित्सा के विरुद्ध होगी, तो जल-चिकित्सा का कोई लाभ यदि न हो तो कोई आश्चर्य की बात न होगी। इसलिए संक्षेप में कुछ खाने की चीजों को बताकर जल के प्रयोगों का विवेचन करना अच्छा होगा।

जल-चिकित्सा की पहली आवश्यकता

भोजन के सम्बन्ध में पिछले परिच्छेदों में पर्याप्त लिखा जा चुका है, परन्तु यहाँ कुछ बातों का उल्लेख करना लाभकर ही होगा। जल चिकित्सा अथवा अन्य कोई भी प्राकृतिक उपचार काम में लाया जाय, उस समय इस बात का खूब ध्यान रहे कि रोगी को आवश्यकतानुसार थोड़ा अथवा बहुत पथ्य भोजन ही दिया जाय और यदि आवश्यकता हो तो उपवास कराया जाय। पथ्य भोजनों में अनार, अंगूर, संतरा और सेव आदि लाभदायक फल दिये जा सकते हैं, इसके सिवा, घर के पिसे हुए जव, गेहूँ की रोटी, मूंग की साधारण दाल, और पालक, तोरई, लौकी, परवल आदि के विकारहीन किन्तु पाचक, लाभदायक शाक बना कर आवश्यकतानुसार खाने को दिये जा सकते हैं।

इन वस्तुओं के देने में इस बात का ध्यान रखने की आवश्यकता है कि खटाई, मिर्च, लहसुन, प्याज, कड़ुआ तेल और मसालों का उपयोग न किया जाय, इसके सिवा कोई भी गरिष्ट, और देर में पचने वाली चीज़ हलुआ, पूड़ी परेठा आदि पकान्न, मिष्टान्न हानिकारक ही होता है। किसी प्रकार के दस्तों की दशा में ज्वर की अवस्था में उपवास करना ही लाभदायक होता है। यदि आवश्यकता पड़े और बालक रोगी होने के कारण

यदि उपवास न कर सके, तो उस समय आवश्यकता को देखकर ही, गाय के थोड़े से दूध में साबूदाना अथवा मूंग की दाल दी जा सकती है। इस प्रकार जब तक रोगी पूर्ण स्वस्थ न हो जाय, खाने-पीने में कुछ गड़बड़ी न करना चाहिए, अन्यथा लाभ की बहुत कम सम्भावना होती है। यदि पथ्यापथ्य का भली प्रकार ध्यान रख कर चिकित्सा की जायगी तो लाभ में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता।

इसके पश्चात् जल-चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए। जल-चिकित्सा-शास्त्र के अनुसार, शरीर में जितने भी रोग होते हैं, उन सब का एक ही कारण है और एक ही स्थान है। वह कारण है पेट की खराबी! वह स्थान है पेट! मेदा!! इसके पहले के परिच्छेद में, जैसा कि बताया जा चुका है, यदि पेट की रक्षा की जा सके, तो सौ में पञ्चानवे रोगों से शरीर की रक्षा होती है। इस प्रकार शरीर में होने वाले प्रायः सभी रोग पेट की गड़बड़ी से ही आरंभ होते हैं। इसके सिवा कुछ अन्य रोग भी हैं जो रक्त के विकृत होने से उत्पन्न होते हैं किंतु इन रोगों की संख्या बहुत कम है। जो भी हो, जितने भी रोग शरीर में उत्पन्न होते हैं और वे चाहे जैसे उत्पन्न होते हों, जल के वैज्ञानिक प्रयोगों से सहज ही नष्ट होते हैं। इस चिकित्सा में विशेषता यह है कि आयुर्वेदिक, यूनानी और डाक्टरी चिकित्साओं की भाँति

इसके द्वारा रोग कुछ समय के लिए दबाया नहीं जाता, वरन समूल नष्ट किया जाता है।

जल-चिकित्सा में दूसरी विशेषता यह है कि इसमें किसी प्रकार व्यय की आवश्यकता नहीं होती और न किसी का आश्रय ही लेना पड़ता है, एक साधारण शिक्षित मनुष्य, विना किसी कठिनाई के, विना रुपये-पैसे के खर्च के, अपने रोगों का प्रतिकार कर सकता है।

जल-चिकित्सा संसार के लिए नयी बात नहीं है, प्रायः सभी देशों के प्राचीन ग्रंथों में इसके कुछ न कुछ उल्लेख पाये जाते हैं। हमारे यहाँ प्राचीन काल में इसकी उपयोगिता को स्वीकार किया गया था और उसी के फल स्वरूप हमारे प्राचीन शास्त्रों में जल के प्रयोगों का जहां-तहां प्रमाण मिलता है। परन्तु इधर इस जल-चिकित्सा-विज्ञान ने संसार में अधिक उन्नति की है और इस चिकित्सा-विज्ञान को अधिक उपयोगी तथा कार्यरूप में लाने का प्रयत्न जो जर्मन के एक प्रसिद्ध विद्वान् मि० लुई कुह्ने ने किया है, वह सर्वथा स्तुत्य है। यद्यपि इस चिकित्सा-विज्ञान को विदेशी कितने ही विद्वानों ने अपनाया है, परंतु जर्मन के उन विद्वान् को जो श्रेय प्राप्त हुआ है, वह किसी को नहीं मिल सका।

जल के प्रयोग

जल-चिकित्सा में ठंढे जल और गर्म जल के भाप के स्नान कराये

जाते हैं। इस चिकित्सा-विज्ञान के द्वारा निश्चय किया गया है कि शरीर में जब कुछ विकार इकट्ठे हो जाते हैं अथवा खाये हुए भोजन के ठीक-ठीक न पचने से जब पेट में सड़न पैदा होती है तो उसकी दुर्गन्ध और गर्मी से ही रोग उत्पन्न होते हैं, इस लिए शरीर के उन विकारों और दुर्गन्ध-मिश्रित गर्मी को शरीर से निकाल कर बाहर करना ही, वास्तविक चिकित्सा है। इसके लिए जल-चिकित्सा के अनुसार तीन प्रकार के स्नान कराये लिए जाते हैं—

(१) भाप का स्नान
(२) पेट का स्नान
(३) इन्द्रिय-स्नान

सब से पहले भाप के स्नान का ही यहाँ उल्लेख करना है। इसके द्वारा, शरीर के भीतर जो विकार, दुर्गन्ध, उत्ताप पैदा हो जाती है और जो प्रधान रूप में रोगों का कारण होती है, उसको बाहर निकाला जाता है, भाप का स्नान करने की विधि दो प्रकार की है, एक लेट कर और दूसरी बैठ कर। इन दोनों विधियों से किस प्रकार भाप का स्नान लिया जाता है, इसको नीचे लिखा जाता है—

लेटकर भाप का स्नान लेने की विधि

लेटकर भाप का स्नान लेने के लिए चारपाई की भाँति एक यंत्र होता है। जहाँ पर वह यंत्र नहीं होता, वहाँ पर चार-

पाई से ही काम लिया जाता है। यंत्र या चारपाई के सिवा पानी गर्म करने के लिए पाँच पतीलियाँ होनी चाहिए और उस यंत्र अथवा चारपाई को—स्नान लेने के समय—ढकने के लिए, कम्बल, रज़ाई अथवा अन्य कोई ऐसा ही मोटा कपड़ा होना चाहिए जो चारपाई के चारों ओर इस ढँग से ढका जा सके जिससे नीचे से बाहरी हवा उसके भीतर न जा सके और भीतर जो पतीलियाँ रखी जाँय, उसकी भाप बाहर न निकल सके। इसके सिवा एक मोटा कम्बल अथवा रज़ाई स्नान लेने वाले को ओढ़ने के लिए चाहिए। बस स्नान लेने का सामान इतनाही पर्याप्त होगा, लेकिन रोगी जब भाप का स्नान ले चुकेगा तो चार पाई से उठते ही तुरंत उसको ठंढे पानी से नहाने के लिए शीतल पानी का प्रबन्ध होना चाहिए। कम से कम एक बड़ी बाल्टी तो सिर से नहाने के लिए चाहिए और उस बाल्टी के पानी से नहा चुकने पर, तथा आया हुआ पसीना अच्छी प्रकार धुल जाने पर टब में बैठ कर पेट का स्नान करने की आवश्यकता होती है। पेट का स्नान कैसे लिया जाता है, इसको आगे लिखा जायगा। यहाँ पर केवल समझने के लिए, उल्लेख किया जाता है। टब में भी ठंढा पानी प्रयोग किया जाता है। रोगी भाप का स्नान ले चुकने पर पहले चारपाई से उठते ही ठंढे पानी से स्नान करता है और उसके पश्चात् उस टब में बैठ कर, पेट का स्नान लेता है।

इतनी तैय्यारी कर चुकने पर, दो अँगीठियाँ अथवा दो चूल्हे उस स्थान के पास ही जला देने चाहिए, जहाँ पर रोगी भाप का स्नान लेगा। इसके लिए एक कमरा हो जो भाप का स्नान लेते समय वंद किया जा सके तो अच्छा होगा। दो अँगीठियाँ या चूल्हे जला कर उन पर दो पतीली पानी से भर कर गर्म होने को रख देना चाहिए। पतीलियाँ न वहुत वड़ी और न बहुत छोटी होनी चाहिए। उनमें लगभग तीन सेर तक जल आ जाय। पानी उवलने के लिए जब वे चूल्हे अथवा अँगीठी पर रखी जायँ, तो उनमें गले से कुछ कम ही पानी भरा जाय, जिसमें पानी खौलते समय वंद करने पर उवल कर वाहर न गिरे। पतीलियाँ चूल्हे पर रखी रहनी चाहिए। जव उनका पानी खूव खौलने लगता है, तो उसके वाद, उनमें भाप वनने का समय होता है। उस समय पतीलियों को ऐसे ढक्कन से ढका रहना चाहिए जिससे भाप वनने पर वह वाहर न निकल सके।

पानी जव खूव खौलने लगे और उसके पश्चात् जव भाप वनने लगे तो तुरंत ही पतीलियों को न उतार लेना चाहिए, उनको कुछ और अधिक देर तक खौलने देना चाहिए। जव भाप अधिक वनने लगे तो समझना चाहिए कि उनके उतारने का समय आ गया। इस समय तक, उस चारपाई अथवा उस यंत्र को—जिसमें रोगी को भाप देना है—आस पास कम्वल या किसी अन्य खूव मोटे कपड़े से नीचे जमीन तक ढक देना चाहिए, जिससे वाहर

की हवा भीतर न जा सके, और भीतर की भाप बाहर न निकल सके। इस प्रकार चारपाई को तैयार करके रोगी को चारपाई पर लेटा कर, उसको मोटे कम्बल या रजाई ओढ़ा देना चाहिए। और जब पतीलियाँ खूब भाप देने लगें, तो सँड़सी से पकड़ कर चारपाई के आस पास ढके हुए कम्बल को एक हाथ से धीरे से उठा कर, एक पतीली कमर के नीचे और दूसरी पीठ के नीचे रख देना चाहिए और उठते हुए कम्बल को फिर ढक देना चाहिए।

इन दोनों पतीलियों को चारपाई के नीचे रख चुकने पर चूल्हों के ऊपर दो दूसरी पतीलियां उसी प्रकार पानी से भर कर रखना चाहिए और खूब आग जला देना चाहिए। जब इन दोनों पतीलियों में भी भाप निकलने लगे तो पहले जो पतीलियां रखी थीं उनमें जिसकी भाप बहुत कम हो गयी हो, उसको निकाल कर उसके स्थान पर, चूल्हे से एक पतीली उतार कर रख देना चाहिए और चारपाई के नीचे से निकाली हुई पतीली को फिर आग पर उबलने के लिए चढ़ा देना चाहिए। अब एक चूल्हे पर जो नई पतीली बाकी रह जायगी उसको उठाकर रोगी के जंघा या पिंड-लियों के नीचे रख देना चाहिए। इस प्रकार रोगी के नीचे तीन पतीलियाँ भाप देने का काम करने लगेंगी। अब एक चूल्हा जो खाली हो जायगा उस पर पाँचवीं पतीली गर्म होने के लिए चढ़ा देना चाहिए। और बड़ी सावधानी के साथ यह देखते रहना

चाहिए कि कौन पतीली भाप देना कम कर रही है। यह बात समझने में, प्रबन्धक को रोगी से भी सहायता लेनी चाहिए और जो पतीली भाप देना कम कर रही है उसको उठाकर, चूल्हे पर रख देना चाहिए और चूल्हे की पतीली उठाकर, उसके नीचे रख देना चाहिए। इस प्रकार, पन्द्रह मिनट, बीस मिनट, पच्चीस मिनट तक भाप का स्नान लेना चाहिए, लेकिन रोगी की शारीरिक शक्ति का बहुत ध्यान रखना चाहिए, निर्बल रोगी के लिए दस मिनट, पन्द्रह मिनट अथवा इससे भी कम समय काफ़ी होगा। छोटे बालकों के लिए एक और बड़े बालकों के लिए दो पतीली ही काफ़ी होती है।

भाप का स्नान लेने के समय रोगी को मस्तक भी ढक लेना चाहिए। यदि गर्मी की ऋतु होने के कारण अधिक कष्ट मालूम हो और रोगी मुँह और मस्तक न ढक सके, तो भी प्रारंभ में यदि कुछ देर के लिए ढक ले तो अच्छा होता है। बच्चे और निर्बल आदमी यदि मुँह और मस्तक न ढक सकें, तो उनको विवश न करना चाहिए।

पूर्ण रूप से भाप लेने से अथवा गर्मी की ऋतु होने के कारण भाप लेने वाले को प्रायः कुछ कष्ट सा मालूम होता है अथवा चक्कर से आते हुए जान पड़ते हैं, परन्तु इसके लिए घबराना न चाहिए। स्वस्थ आदमी को भी प्रारंभ में पन्द्रह-बीस मिनट ही काफी होते हैं और उसके पश्चात् कई बार सहन कर चुकने पर

आध-आध घंटे तक भाप का स्नान लिया जा सकता है, लेकिन इसके लिए भाप लेने वाले आदमी की निर्बलता और शक्ति का अवश्य ध्यान रखना चाहिए।*

भाप ले चुकने पर, रोगी को उठते ही जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है—ठंडे पानी से, फिर भली प्रकार स्नान करना चाहिए। किसी को इस बात से न घबराना चाहिए कि गर्म शरीर में शीतल पानी कुछ हानि करेगा। इस बात की बिना किसी चिंता के शीतल पानी से खूब स्नान करना चाहिए जिससे भाप लेने के समय जो पसीना आया है और जो शरीर में लगा हो वह धुलकर बह जाय। इस समय ठंडे पानी से स्नानकर चुकने पर वह सब गर्मी, उलझन, बेचैनी और चक्कर दूर हो जाँयगे जो भाप लेने के समय अथवा उसके कारण उत्पन्न हुए थे।

इसके पश्चात् टब में बैठकर, ठंडे पानी के द्वारा पेट का स्नान करना चाहिए। पेट का स्नान करने की विधि इसके बाद में बतायी जायगी। इस प्रकार भाप के स्नान की पहली विधि, जो

*भाप का स्नान लेने के समय बिलकुल नग्न बदन होना अधिक अच्छा है। जो बिल्कुल नग्न न हो सकें, उनको धोती पहनने के स्थान पर लँगोटे का प्रयोग करना चाहिए। कारण यह है कि भाप लेने के समय समूचे शरीर से जो एकत्रित विकार पसीने के रूप में बाहर निकलता है, उसमें किसी अंग में वस्त्र होने से उस विकार को निकालने में, भाप कम प्रभाव करती है।

लेटकर स्नान लिया जाता है, समाप्त हो जाती है। भाप के स्नान की दूसरी विधि इस प्रकार है—

बैठकर भाप का स्नान लेने की विधि

जिस प्रकार लेट कर भाप का स्नान लेने के लिए चारपाई की भाँति एक यंत्र काम में लाया जाता है, उसी भाँति बैठकर, भाप का स्नान लेने के लिए स्टूल की भांति एक यंत्र बनाया गया है, परंतु ये यंत्र विशेष रूप में विदेशों में पाये जाते हैं और वहीं उनके प्रयोग भी होते हैं, हमारे यहाँ उस यंत्र के स्थान पर, बैठ कर भाप का स्नान लेने के लिए कुर्सी का प्रयोग किया जाता है।

बैठ कर भाप लेने के लिए केवल दो पतीलियों की आवश्यकता होती है। चारपाई की भांति कुर्सी*को भी किसी कम्बल से चारों ओर से खूब ढक देते हैं और जब भाप लेने वाला आदमी उसमें बैठता है तो उसको कोई मोटा कम्बल या रजाई ओढ़ा देते हैं और जब पतीली चूल्हे या अँगीठी पर चढ़ाने के बाद, खूब भाप देने लगती है, तो एक पतीली को उठा कर,

* इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बैठ कर भाप लेने के लिए जो कुर्सी काम में लाई जाय, वह बेंत से बुनी होनी चाहिए, कुछ कुर्सियों में लोग लकड़ी के तख्ते लगवा देते हैं, इस प्रकार की कुर्सियाँ काम में नहीं लाई जा सकतीं। बेंत की बुनी हुई कुर्सी में जो सूराख़ होते हैं, उनसे ही सुविधा के साथ रोगी को भाप प्राप्त होती है।

कुर्सी के नीचे रख देते हैं और चूल्हे या अँगीठी पर दूसरी पतीली चढ़ा देते हैं। जब रखी हुई पतीली भाप देना कम कर देती है और दूसरी पतली भाप देने लगती है तो चूल्हे से उसको उठाकर कुर्सी के नीचे कर देते हैं और कुर्सी के नीचे की पतीली फिर चूल्हे पर चढ़ा देते हैं। इस प्रकार बैठ कर कुर्सी पर भाप ली जाती है। शेष सभी बातें पहली विधि, लेट कर लेने की ही भांति हैं।

बैठ कर भाप का स्नान ले चुकने पर, लेट कर भाप लेने की भांति इसमें भी तुरंत ठंढे पानी का स्नान किया जाता है और उसके पश्चात् टब में बैठकर, पेट का स्नान लिया जाता है।

भाप के स्नान की कुछ आवश्यक बातें

लेट कर जो भाप का स्नान लिया जाता है, उसमें पहले पीठ के बल आदमी को लिटाया जाता है और जब खूब पसीना आचुकता है तो अंत में थोड़ी देर के लिए, पेट के बल भी लेट जाना चाहिए। ऐसा करने से पेट और छाती तथा इस ओर के अंग से भी काफ़ी पसीना आ जाता है और छिपे हुए विकार पसीने के रूप में बाहर हो जाते हैं। भाप का उद्देश्य केवल शरीर से पसीना लाना है। जिनके शरीर में विकार कम होता है उनको पसीना शीघ्र आने लगता है, किंतु जिनके शरीर में विकृत अंश अधिक मात्रा में पाया जाता है, उनको पसीना कुछ देर में अथवा कुछ कठिनाई में आता है

और जब आता भी है तो कम आता है। किंतु भाप के स्नान लेते-लेते जब विकृत अंश कम होते जाते हैं, तो पसीना अधिक आता और अधिक मात्रा में आना आरम्भ हो जाता है।

इसके साथ ही, यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि शरीर के सभी भागों में विकृत अंश बराबर नहीं होते। रोग के अनुसार कहीं कम और कहीं अधिक होते हैं। मानलिया जाय कि किसी को दाद अथवा खाज होगयी है तो जिस स्थान पर दाद या खाज होती है, उसी स्थान पर विकृत-पदार्थ अधिक समझना चाहिए। इसीप्रकार जब किसी के फोड़ा-फुनसी होते हैं और एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे का नम्बर आता जाता है, तो समझा जाता है कि शरीर के उन स्थानों में विकार अधिक मात्रा में मौजूद है। इसीप्रकार भिन्न भिन्न रोगों के अनुसार भिन्न-भिन्न अंगों और स्थानों में विकार की मात्रा अधिक परिमाण में पाई जाती है। ऐसी अवस्था में. जब भाप के स्नान लिये जाते हैं तो यह भी देखा जाता है कि जिन अंगों और स्थानों में विकार की मात्रा अधिक होती है, वहाँ पर पसीना नहीं आता और यदि आता भी है तो बड़ी देर में। यह बात जानकर भाप लेने के समय इन स्थानों और अंगों का ध्यान रखना चाहिए और भाप देनेवाली पतीली को उन्हीं अंगों के नीचे रखकर भाप लेनी चाहिए।

इसके लिए एक बात और ध्यान में रखना चाहिए। जिन अंगों और स्थानों में विकार की मात्रा अधिक होती है, जब उनके

नीचे पतीली रखकर भाप लीजाती है, तो उन अंगों और स्थानों में बड़ा अच्छा लगता है और कभी-कभी तो इच्छा होती है कि साधारण भाप निकलने के बजाय, तेज़ भाप देनेवाली पतोली इस स्थानों पर रखीजाय। जब ऐसी अवस्था प्रतीत हो तो समझ लेना चाहिए कि शरीर के भीतर का चोर यहीं पर है, यह जान-कर, उस चोर को शरीर से बाहर निकालने के लिए उन अंगों और स्थानों में खूब भाप लेनी चाहिए।

भाप के स्नान में कुछ कष्ट नहीं होता, वरन् अच्छा लगता है, रोगी को खाटपर अथवा कुर्सी पर बिठाकर जब भाप का स्नान दिया जाता है तो उसके जिन अंगों में रोग होता है, अथवा जिन अगों में पीड़ा और वेदना होती है, उन अंगों में भाप के पहुँचते ही, बड़ा आराम मिलता है। किन्हीं किन्हीं रोगियों को अपने कष्टों के समय इतना आराम मिलता है कि उनको रोना भूलकर हँसना आजाता है। दाद और खाज की अधिक खुजली में, बड़े-बड़े फोड़ों की पीड़ा में किसी स्थान की सूजन की वेदना में और मसूड़े आदि सूज जाने में जब कभी बहुत बेचैनी बढ़जाती है और किसी प्रकार कल नहीं पड़ती तो भाप को लेते ही आराम मिलता है और बात की बात में रोगी की बेचैनी दूर हो जाती है।

हाँ, जिनका शरीर निर्बल होता है और भाप का स्नान लेते हुए कुछ देर हो जाती अथवा गर्मी की ऋतु होती है और सूर्य की उत्ताप तथा लपट के मारे बेचैनी होती है, ऐसी अवस्था में

भाप के अन्दर उष्णता पहुँचने में कुछ गर्मी का कष्ट अवश्य मालूम होता है, परन्तु उतना ही और उसी प्रकार आराम और कष्ट की साधारण वेदना का मिश्रण होता है जिस प्रकार दाद और खाज की तेज खुजलाहट के समय कुछ आराम और पीड़ा का मिश्रित सामञ्जस्य होता है। यह बढ़ती हुई गर्मी, उलझन और बेचैनी, भाप का स्नान ले चुकने पर, ठंडे पानी से स्नान करते ही एकदम दूर हो जाती है और उसके पश्चात् जब भाप लेनेवाला पेट का स्नान लेने के लिए टब में बैठता है तो थोड़ी ही देर में उसका शरीर बिल्कुल हल्का और स्वस्थ प्रतीत होता है।

पेट का स्नान

पेट का स्नान लेने के लिए जस्ते का बना बनाया प्रत्येक शहर में टब मिलता है, पहले ये टब बहुत मँहगे आते थे लेकिन अब तो वे सस्ते हो गये हैं। ये टब* छोटे और बड़े, सभी प्रकार के बाज़ार में मिलते हैं। स्नान लेने वाले को, अपनी

* जहाँ पर जस्ते के टब न हों अथवा जिनको बाज़ार के बने बनाये ये टब न मिल सकें वे मिट्टी की नाद का प्रयोग कर सकते हैं। ये नादें कुम्हारों के यहाँ बनी हुई मिलती हैं, उनमें से मज़बूत ढूँढ़-कर कोई ले लेना चाहिए और अपने घर में, उसके नीचे और आस-पास गीली मिट्टी का चबूतरा बनाकर सुखा लेना चाहिए, जिससे नाद टूट न सके।

आवश्यकता के अनुसार, बाज़ार से मोल ले लेना चाहिए और पेट का स्नान लेने के समय, ठंढे पानी से उसको ऐसा भरना चाहिए कि उसमें बैठने से, पानी नाभी के काफ़ी ऊपर तक—पेट का प्रायः समूचा भाग—आ जाय। इसके लिए ठंढे पानी का होना ही गुणकारी होता है। ठंढे देशों में तो इसका कभी भी अभाव नहीं होता, परन्तु भारत जैसे गर्म—देशों में, गर्मी की ऋतु में ठंढे पानी का मिलना कठिन हो जाता है, विशेष कर जो लोग शहरों में रहते हैं और जिन शहरों में कुओं के स्थान पर पानी के नलों का प्रयोग किया जाता है वहाँ, गर्मी में बड़ी कठिनाई होती है। इसके लिए जिनको अपने यहाँ अच्छे, शीतल कुओं का पानी मिलसके, उनको उसी पानी का प्रयोग करना चाहिए और जिनको न मिल सके, उनको चाहिए कि मिट्टी के बड़े-बड़े एक या दो घड़े रखकर और उनमें पानी भरकर, ठंढा कर करलें और उनके द्वारा ठंढा किया गया पानी काम में लावें।

ठंढे पानी का प्रयोग करने के लिए प्रायः लोग बर्फ़ का प्रयोग करते हैं, यह बड़ी भूल है, बर्फ़ का ठंढा पानी अथवा बर्फ़ डालकर, ठंढा किया गया पानी कभी भी स्नान के लिए न प्रयोग करना चाहिए। कुओं का पानी ही इसके लिए उपयोगी होगा। थर्मामीटर के अनुसार जिस पानी में ६८ से ८४ डिग्री तक उष्णता पायी जाती हो उसी का प्रयोग करना चाहिए

परन्तु सर्वसाधारण को थर्मामीटर मिलने में असुविधा होगी, ऐसी अवस्था में उनको यह जानने के लिए समझ लेना चाहिए कि देहात के अच्छे, ठंढे कुओं* का पानी जितना शीतल होता है, पेट का स्नान लेने के लिए, उतनी शीतलता काफ़ी होगी। थर्मामीटर के न होने पर पानी की शीतलता का इसी प्रकार अनुमान कर लेना चाहिए और इस प्रकार प्राप्त होने वाला ठंढा जल उतना शीतल होना चाहिए, जिसमें बैठते ही उसकी ठंढक का बोध होने लगे। इस प्रकार के जल में बीस मिनट, पच्चीस मिनट अथवा आधा घन्टा बैठने से, शरीर को सर्दी मालूम होना स्वाभाविक हो, यदि ऐसा जान पड़े तो समझना चाहिए कि पानी की ठंढक ठीक है।

उस टब को ठंढे पानी से भर कर, उसमें बैठ जाना चाहिए। बैठने पर पानी जंघों से लेकर, पेट तक पहुँचेगा। यदि टब का प्रयोग किया जाय तो उसमें पीठ की ओर सिर रखने की सुविधा होती है, उसमें सिर रख कर, आधा लेटने के समान हो जाना चाहिए। यदि टब न हो और मिट्टी की नाँद का प्रयोग किया

*कुछ कुओं का पानी न तो ठंढा होता है और न अच्छा होता है, उनका पानी काम में न लाना चाहिए। इसके साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जिन कुओं के पानी का प्रयोग नहीं होता रहता अर्थात् जिनका पानी सदा निकलता नहीं रहता, उनका भी पानी काम में नहीं लाना चाहिए।

गया हो, तो पीठ की ओर कुर्सी अथवा ऊँचे स्टूल को रख कर और उसका सिर रखने के लिए, सहारा लेकर टब की दशा में हो जाना चाहिए। पानी में बैठ जाने पर, अपने दाहिने हाथ में कोई साफ मोटा कपड़ा अथवा छोटी तौलिया लेकर, पेट को नाभी की ओर से नीचे को मलना चाहिए। परंतु इसके लिए किसी प्रकार के ज़ोर की आवश्यकता नहीं है, धीरे-धीरे आराम के साथ, ऊपर से नीचे की ओर मलने का काम करना चाहिए।

पेट का स्नान लेने वाला यदि रोगी है अथवा अधिक निर्वल है तो ठंढे पानी का स्नान देते समय सिर और पैरों को ठंढक न पहुँचे, इसका ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए स्नान लेने वाले को सिर से लेकर एक कम्बल आस-पास लपेटता हुआ, पैरों को उससे ढक देना चाहिए और टब अथवा नाद के दाहिने और वायें तरफ़ एक कुर्सी अथवा स्टूल या अन्य कोई ऐसी चीज रख लेना चाहिए जिससे कम्वल ज़मीन पर न रहे, पैरों के नीचे कोई ऊँचा पीढ़ा या और कोई चीज़ रख लेना चाहिए जो पैरों को ज़मीन से कुछ ऊँचा रखे।

पेट का स्नान लेने के समय, कमरे में ताज़ी वायु का आना वहुत आवश्यक है। यह स्नान उस समय तक लेना चाहिए, जब तक स्नान लेने वाले को अपना शरीर ठंढा न जान पड़े, और जब ऐसा अनुभव हो कि शरीर से गर्मी निकल गयी और सर्दी लगती

है, तो फिर स्नान बंद कर देना चाहिए। इसके निर्णय में अपनी इच्छा भी बड़ी सहायता करती है। इच्छा के विरुद्ध कभी अधिक स्नान लेने की जरूरत नहीं है। रोगी, निर्बल आदमी, बालक-बालिकाओं और सुकुमार स्त्रियों को उनकी शक्ति और सहन के अनुसार ही स्नान देना चाहिए। सब से अच्छा तो यह होगा कि प्रारंभ में बहुत थोड़ी मात्रा रखी जाय और फिर धीरे-धीरे उसको बढ़ाते जाँय।

पेट का स्नान जब समाप्त करें, तो तुरंत वस्त्र पहन कर घूमने के लिए बाहर चले जांय। घूमने के लिए वहीं जाना चाहिए, जहाँ की वायु बहुत शुद्ध हो। रास्ते में चलते हुए इतनी तेजी और परिश्रम के साथ चलना चाहिए जिससे शरीर में गर्मी आ जाय और पसीना आ जाय। यदि पेट का स्नान लेने के पश्चात् ही खुली और शुद्ध वायु में व्यायाम किया जा सके तो और भी अच्छा है। इन सभी बातों का अभिप्राय यह है कि शरीर से गर्मी के रूप में विषैले अंश के निकल जाने पर जब शरीर ठंढा पड़ जाता है तो तुरंत ही शरीर में फिर प्राकृतिक गर्मी लाने की आवश्यकता होती है। इसी लिए शीतकाल में अथवा ठंढे देशों में, ठंढे पानी के स्नान के बाद, तुरंत ही गर्म वस्त्रों को पहन कर बाहर घूमने का आदेश दिया गया है। यदि स्नान लेने वाले को कभी अधिक ठंढक अनुभव हो तो उसको गर्म वस्त्र पहना कर और ओढ़ा कर, उसमें गर्मी लाना चाहिए, अथवा सूर्य के धूप में खड़े

होकर या अधिक शीत में शरीर की शक्ति के अनुसार यदि सामर्थ्य काम करे तो सूर्य की धूप में व्यायाम करना चाहिए और कुछ पसीना आ जाने पर अथवा फिर गर्मी का अनुभव होने पर वंद कर देना चाहिए।

इन्द्रिय-स्नान

इन्द्रिय-स्नान से स्त्री-पुरुषों को इन्द्रिय सम्बन्धी समस्त रोगों पर अद्भुत लाभ होता है। इन्द्रिय-स्नान दो प्रकार से लिया जाता है। एक तो जव पेट का स्नान लेने के लिए टब में वैठा जाता है तो उस समय भी इन्द्रिय-स्नान लिया जाता है और यदि पेट का स्नान लेने की आवश्यकता न हो, केवल इन्द्रिय स्नान की ही जरूरत हो तो उसी प्रकार का ठंढा पानी, जैसा पेट के स्नान में काम में लाया जाता है, चीनी के चिलमची में उसका तीन चौथाई भर देना चाहिये। यदि चिलमची न हो तो उसके अभाव में अल्यूमीनियम के गहरे तसले को उसकी जगह काम में लाना चाहिये। उसमें ठंढा पानी भर कर, जमीन में रख कर और एक ऊँचे पीढ़ा में वैठ कर अत्यंत साफ़, मुलायम कपड़े से इन्द्रिय-स्नान लिया जाता है। स्नान लेने की विधि यह है कि पुरुष अपने लिङ्ग को उस पानी में डाल कर अपने एक हाथ में उस मुलायम कपड़े को ले और कपड़े का प्रयोग करने के पूर्व, अपने लिङ्ग की सुपारी के ऊपर की खलड़ी

को हाथ की उँगलियों से आगे की ओर खींचे, जिससे वह आगे को खिंच कर,लिङ्ग को पीछे छोड़ देगी। उसके आगे आजाने पर, उस कपड़े को जल में भिगो कर, अपने दाहिने हाथ से उस खलड़ी के अंतिम सिरे के किनारों और उसके नीचे के भाग को हलके-हलके हाथों से, धीरे-धीरे धोये। धोने के समय इस बात का ध्यान रहे कि सुपारी को किसी प्रकार की रगड़ न लग सके।

इन्द्रिय-स्नान में भी, रोगी की दशा, शक्ति और अवस्था का विचार करके, दस मिनट से लेकर एक घंटे तक का समय दिया जा सकता है। जल की शीतलता इसमें भी उसी प्रकार उपयोगी है, जिस प्रकार पेट के स्नान में। स्नान लेने वाले को यह जानना चाहिये कि जितना ही अधिक ठंढा पानी काम में लाया जायगा उतनाही अधिक लाभ हो सकता है।

इन्द्रिय-स्नान, स्त्रियों की इन्द्रिय-सम्बन्धी समस्त बीमारियों में उतना अधिक लाभ पहुँचाता है जितना अन्य किसी भी चिकित्सा से सम्भव नहीं है। प्रदर की बीमारी में, मासिक धर्म की किसी भी खराबी में इस स्नान का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी है। स्त्रियों को भी पुरुषों की ही भाँति इस स्नान को लेना पड़ता है। इन्द्रिय-स्नान लेने के लिये तसले से अधिक उपयोगी तो टब होता है लेकिन जब केवल इन्द्रिय-स्नान लेना है तो उसके भीतर बैठने के बजाय यदि एक चौड़ा छोटा-सा तख्ता उस टब

के एक भाग में ऊपर रख कर और उसमें बैठ कर इन्द्रिय-स्नान लिया जाय तो अधिक अच्छा है। उसमें बैठकर और उस कपड़े से, जो एक रूमाल के बराबर होगा, एक बार में जितना पानी उठाया जा सके, टब से उठाकर ऊपर बताए हुए नियम के अनुसार खलड़ी के किनारों और निम्न भागों को मुलायम हाथों से धोना चाहिए। जितनी देर तक उस स्नान को लेना चाहे, बराबर उस कपड़े से पानी उठाकर उस को धोने का काम करता रहे लेकिन सुपाड़ी को कपड़े की रगड़ से बचाकर।

जिस प्रकार पुरुष इस स्नान को लेंगें, स्त्री भी उसी प्रकार टब में तख्ते के ऊपर बैठकर, एक हाथ में साफ-मुलायम कपड़े को लेकर योनि के मुख-द्वार को पानी उठा-उठाकर खूब धोये, पानी जितना उठाया जा सके, उठाकर लेजाना चाहिए और खाल के उस स्थान को अधिक से अधिक पानी से तर करता हुआ और कपड़े का सारा पानी उस पर छोड़ता हुआ, मुलायम हाथों से धीरे धीरे धोने का काम करे। योनि के भीतरी, कोमल अंग को किसी प्रकार की रगड़ न लगना चाहिए। शेष सभी बातें स्त्री-पुरुष की एक ही रहेंगी। मासिक धर्म के दिनों में स्त्री को इन्द्रिय-स्नान बन्द कर देना चाहिए। यही नहीं, जल-चिकित्सा के सारे प्रयोग मासिक धर्म के दिनों में स्त्री को बन्द रखना चाहिए।

यदि स्त्री के। मासिक धर्म में अधिक समय लगता हो तो उसे समझना चाहिए कि तीन दिनों से अधिक मासिक धर्म नहीं वरन् मासिक धर्म की खराबी है, उससे स्वास्थ्य नष्ट होता है और अन्य भयंकर बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। यदि तीन दिन से किसी स्त्री को अधिक समय लगता है जैसा प्रायः देखा जाता है कि किसी-किसी स्त्री को छः-छः दिन सात-सात दिन रक्त-प्रवाह की दशा में ही रात-दिन काटने पड़ते हैं तो ऐसी अवस्था को अपनी रोगी की अवस्था समझ कर तीन दिन के पश्चात् चौथे दिन से स्त्री को इन्द्रिय स्नान लेना आरंभ कर देना चाहिए। इस स्नान का, अपनी शक्ति के अनुसार प्रयोग करने से वह समय की अधिकता नष्ट हो जायगी और स्वाभाविक तौर पर जितना समय स्त्री को उसमें लगना चाहिए, उसके सिवा अधिक लगना बंद हो जायगा। पेट का स्नान लेने के बाद, जिस प्रकार तुरंत घूमने या व्यायाम करने की आवश्यकता होती है, इन्द्रिय-स्नान कर चुकने पर, स्त्री और पुरुष—दोनों के लिए यह आवश्यक है कि वह तुरंत बीस मिनट या आध घंटे के लिए किसी शुद्ध वायु के स्थान में घूमने के लिए निकल जांय।

अन्य आवश्यक बातें

जल चिकित्सा पर, ऊपर तीन प्रकार के स्नान बताये गये हैं। ये अत्यंत सरल हैं और जरा सो सावधानी के साथ विचार

करने पर, इन्हीं के द्वारा शरीर में होने वाले समस्त रोग अच्छे किये जा सकते हैं। किसी भी दशा में, किसी भी उपयोग में, कभी हानि होने का डर नहीं है। सभी बातों को सावधानी से पढ़कर और समझ कर उनका उपयोग करना चाहिए। जो बात समझ में न आवे अथवा कहीं पर भ्रम मालूम हो तो उसको फिर से पढ़कर, समझ लेना चाहिए। जितनी बातें आरंभ से बतायी गयी हैं, उनका स्मरण रखना चाहिए। नीचे कुछ आवश्यक बातें बतायी जाती हैं। उनको याद रख कर लाभ उठाना चाहिए।

(१) भाप का स्नान रोज़ नहीं लेना चाहिए। रोगी की दशा और शक्ति देख कर सप्ताह में दो बार या तीन बार तक दिया जा सकता है। यदि इसमें भी कभी शरीर में गर्मी अधिक मालूम हो या चक्कर आवें और सिर में पीड़ा हो तो भाप का स्नान लेने की मात्रा और भी कम कर देनी चाहिए और सिर में पीड़ा होने, चक्कर आने की दशा में यदि रोगी स्वस्थ है तो ठंढे जल का स्नान दिन में एक बार, दो बार और तीन बार तक देकर उससे लाभ उठाना चाहिए। यदि स्वास्थ्य अच्छा नहीं है तो बस्ती के बाहर शुद्ध वायु में किसी पार्क या बाग में अथवा किसी बड़ी नदी के किनारे खूब टहलना चाहिए। लेकिन प्रातःकाल और सायंकाल के ठंढे समय में ही।

(२) यदि भाप का स्नान लेनेवाला घूमने में असमर्थता अनुभव करता हो, तो घर के किसी ऐसे कमरे अथवा खुले

स्थान में, जहाँ वायु खुले मार्ग से आती-जाती हो, लेटकर स्वच्छ वायु का सेवन करना चाहिए।

(३) पेट का स्नान साधारण तथा दिन में एक वार लेना चाहिए। किंतु यदि स्नान लेनेवाला स्वस्थ और आरोग्य है और उसकी सामर्थ्य के अनुकूल जान पड़े तो पेट का स्नान दिन में दो वार और तीन वार तक दिया जा सकता है।

(४) पेट के स्नान में, विशेष कर शीतकाल में सिर और पैरों को ठंढक से वचाना चाहिए। शीत मास में जब जाड़ा अधिक पड़ता हो, यदि ठंढे पानी का स्नान लेने की आवश्यकता है, तो सिर और पैरों को कम्बल से ढक लेना चाहिए। और स्नान लेकर उठने पर, गर्म कपड़े पहन कर ही वायु-सेवन के लिये जाना चाहिए।

(५) अधिक निर्बल आदमियों को, भयंकर रोगियों को, पागल और उन्माद पीड़ितों को भाप का स्नान नहीं देना चाहिए। उनको पेट का स्नान ही लाभ पहुँचा सकता है। किंतु यदि किसी रोगी को पसीना आने की आवश्यकता हो और भाप के स्नान के लिए उसकी सामर्थ न हो तो धूप का स्नान *देकर, पेट का स्नान देना चाहिए।

* धूप के स्नान का अर्थ यह है कि रोगी की सामर्थ्य के अनुसार प्रातःकाल की हलकी धूप में एक चारपाई पर लिटाकर, उसके बदन पर धूप लगने दे। ऐसे समय उसके मस्तक और आंखों को किसी साफ़

(६) ऊपर बताये हुए चिकित्सा के रूप में जल का प्रयोग कबतक—कितने दिनों तक करना चाहिए, इसके लिए कुछ निश्चित नहीं है। चिकित्सा के नाम पर ये प्राकृतिक प्रयोग हैं, जिनसे लाभ तो अवश्यम्भावी है और यदि ठीक-ठीक तौर से प्रयोग किया जाय तो पहले ही दूसरे दिन रोगी को एक अद्भुत शान्ति मिलती है। इसलिए आरम्भ करके उस समय तक इनका प्रयोग करना चाहिए जब तक रोगी को अपने शरीर में किसी प्रकार का कुछ विकार अथवा विषैला अंश प्रतीत हो।

(७) प्रयोग करने के कुछ समय बाद तक यदि कुछ लाभ न प्रतीत हो तो समझ लेना चाहिए कि हमारे प्रयोग करने में त्रुटि है। जब तक उस त्रुटि को दूर न किया जायगा तब तक उससे लाभ नहीं हो सकता, ऐसी अवस्था में जल-चिकित्सा के किसी अनुभवी विद्वान् से परामर्श लेकर प्रयोग करना चाहिए। *

कपड़े से ढक दे। यदि सम्भव हो तो उसके बदन को नग्नावस्था में धूप लगने दे। यदि रोगी की इच्छा धूप लेने की न रहे तो वहाँ से हटा ले।

* यदि इस चिकित्सा का कोई अनुभवी विद्वान किसी को न मिले अथवा नज़दीक अपने नगर गाँव, कस्बे में न हो और इस पुस्तक को पढ़कर जल के स्नान आरम्भ किये हों और वे तुरन्त फ़ायदा न करें तो पुस्तक के लेखक से अपने रोग और जल के प्रयोगों पर परामर्श लेकर, लाभ उठा सकते हैं।

(८) जल-चिकित्सा से लाभ उठाने के लिए, यह अत्यंत आवश्यक है कि यदि अधिक नहीं तो चिकित्सा के दिनों में उपवास किया जाय और यदि भोजन करने की ही आवश्यकता हो तो पथ्य और प्राकृतिक भोजन ही खाने के काम में लाये जाँय।

१०—आसनों द्वारा स्वास्थ्य-लाभ

प्राचीन काल में आज से हज़ारों वर्ष पहले हमारे प्राचीन ऋषि आध्यात्मिक उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गए थे। उन्हों ने आत्मा को परमात्मा में लीन कर देने के लिए योग की साधना आविर्भूत की थी। योग शब्द का अर्थ ही है मेल अर्थात् जीवात्मा का परमात्मा से संयोग। परन्तु उन्होंने इसकी सिद्धि के लिए इस भौतिक शरीर को भूल जाना उचित न समझा था। 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं' अर्थात् शरीर धर्म का पहला साधन है उनका सिद्धान्त था। इसके अनुसार उन्होंने शरीर की रक्षा के लिए हठयोग की सृष्टि की थी। कहना न होगा यह हठ-योग केवल आध्यात्मिक सिद्धि के लिए ही उन महर्षियों के उर्वर मस्तिष्क से आविर्भूत हुआ था।

यद्यपि हठयोग का आविष्कार एक मात्र आध्यात्मिक उन्नति के लिए ही प्राचीन काल में हुआ था तथापि आज हम संसारी पुरुष भी शरीर-रक्षा के लिए ऋषियों के इस सर्वोत्तम मार्ग से वंचित नहीं रखे जा सकते। भौतिक शरीर की रक्षा के लिए हम इस हठयोग का भलीभाँति उपयोग कर लाभ उठा सकते हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि हठयोग केवल योगियों का ही मार्ग है परन्तु यह धारणा बिल्कुल भ्राँतिपूर्ण है। थोड़ा सा ही संयम

पूर्वक जीवन व्यतीत कर स्त्री, पुरुष, विवाहित, और अविवाहित, वालक, युवा और वृद्ध सभी हठयोग से असीम लाभ उठा सकते हैं।

हठयोग का आविष्कार आज से सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ था परन्तु दुर्भाग्य से हमारी सभ्यता का लोप हो चला और हम पराधीन हो कर अपनी विद्याओं को भूलने लगे। इस अज्ञानान्धकार में हठयोग की महत्ता भूल जाना स्वाभाविक ही था। हजारों वर्ष के वाद अब हमारा देश कुछ चेतने लगा है और इसी के फलस्वरूप शरीर-रक्षा के लिए अपूर्व साधन हठयोग अथवा योगासन की ओर भी लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है। इस संबंध में हमें लोणावला (पूना) के कैवल्यधाम नामक योगाश्रम के संस्थापक श्रीयुत स्वामी कुवलयानंद जी का अत्यंत कृतज्ञ होनाचाहिए जिन्होंने अथक परिश्रम कर योगासनों को विल्कुल नए रूप मेंसम्पूर्ण संसार के सम्मुख रखा है। लगभग सात आठ वर्षों से उन्होंने कैवल्यधाम नाम के आश्रम की स्थापना कर योगासनों का वैज्ञानिक ढङ्ग से परीक्षण करना आरम्भ किया है। उनकी महत्वपूर्ण गवेषणाओं और वैज्ञानिक प्रयोगों ने सम्पूर्ण संसार के सम्मुख सिद्ध कर दिया है कि शरीर को नीरोग बनाए रखने के लिए योगासन ही सर्वोत्तम साधन हैं। यह केवल मौखिक सिद्धान्तों के ही रूप में नहीं है, वरन् साक्षात् कार्यरूप में परिणत हो गया है। उनके आश्रम में आज हजारों रुग्ण व्यक्ति जाकर लाभ

उठा चुके हैं। प्रत्येक मास आगन्तुकों का मेला लगा रहता है और कभी कभी रहने के लिए स्थान भी नहीं मिलता।

कैवल्यधाम का परीक्षण-कार्य बराबर जारी है। अभी तक निम्नांकित रोगों को योगासन द्वारा पूर्ण रूप से दूर करने में आश्रम को पूर्ण सफलता मिल चुकी है:—मंदाग्नि, मलावरोध, सिर दर्द, बवासीर, हृद्रोग, स्नायु की दुर्बलता, मधुमेह, हिस्टीरिया (वातोन्माद), क्षय, मोटापन, बाँझपन, नपुंसकता, अँतड़ियों की वृद्धि।

इन उपर्युक्त रोगों से छुटकारा पाने के लिए कैवल्यधाम का आश्रय लेने वाले व्यक्ति निराश नहीं लौट सकते। इस सम्बन्ध में एक कठिनाई यह है कि अभी आश्रम केवल अपने यहाँ ही रोगियों की परीक्षा कर योगासन का अभ्यास क्रम बतलाता है।* जो लोग स्वास्थ्य-लाभ के लिए धन व्यय कर सकते हैं उनके लिए वहाँ जाकर लाभ उठाने का अवसर है परन्तु जिन्हें धनाभाव या समयाभाव से वहाँ जाने का अवसर नहीं मिल सकता, उन्हें कुछ और वर्षों तक इस साधन से लाभ उठाने से वंचित रहना पड़ेगा। जब आश्रम अपने परीक्षणों को पूर्ण कर रोगों के दूर करने के लिए योगासनों पर कुछ निश्चित मंतव्य प्रकाशित करेगा जिससे आश्रम से दूर रहने वाले व्यक्ति भी बिना गुरु के लाभ उठा सकें तो योगासनों से सब लोग पूर्ण लाभ उठा सकते हैं।

* कैवल्य धाम में केवल ४५) मासिक भोजन-व्यय देना पड़ता है। किसी प्रकार का अन्य शुल्क नहीं है।

इसी कठिनाई के कारण हम यहाँ पर भिन्न भिन्न रोगों को दूर करने के लिए योगासनों की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं समझते। कैवल्यधाम ने साधारण लोगों के लिए योगासनों का एक सर्वोत्तम अभ्यास-क्रम तैयार किया है जिससे सब लोग पूर्ण लाभ उठा सकते हैं। हम उसे यहाँ पर देते हैं। केवल इन्हीं आसनों का अभ्यास कर योगासनों से अधिक से अधिक लाभ उठा कर प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ रह सकता है।

साधारण नीरोग मनुष्यों के लिए यौगिक व्यायाम का सम्पूर्ण अभ्यास क्रम

	प्रारम्भ में	बढ़ाने का क्रम	अंत में
१—शीर्षासन	१/४ मिनट	१/२ मिनट प्रति सप्ताह	१२ मिनट
२—सर्वाङ्गासन	१/२ ”	१ ” ”	६ ”
३—मत्स्यासन	१/४ ”	१/५ ” ”	३ ”
४—हलासन	१ ”	१ ” ”	४ ”
५—भुजंगासन ६—शलभासन ७—धनुरासन	तीन वार प्रत्येक वार १/६ मिनट तक आसन स्थिर रखना चाहिए।	एक वार प्रति पक्ष	सात वार
८—अर्धमत्स्येन्द्रासन	१/४ मिनट	१/५ मिनट प्रति सप्ताह	१ मिनट
९—पश्चिमतान	१/४ ”	१/४ ” ”	१ ”
१०—मयूरासन	१/६ ”	१/४ ” ”	२ ”

११—योगमुद्रा	१	"	१	"	"	३ "
१२—शवासन	२	"	२	"	"	१० "

संक्षिप्त अभ्यास क्रम

१—भुजङ्गासन
२—धनुरासन
३—अर्द्धशलभासन
— इनमें से प्रत्येक आसन तीन वार से आरंभ करके प्रत्येक पक्ष में एक आवृत्ति वढ़ाते हुए सात वार तक ले जावें और दो सेकंड से लेकर पाँच सेकंड तक आसन स्थिर रखें।

४—हलासन — पहले केवल अर्द्ध हलासन उसकी प्रत्येक सीढ़ी में दो सेकंड तक ठहरते हुए करे, उसके वाद पूर्ण हलासन उसकी चारों सीढ़ियों में दो सेकंड तक ठहरें और तीन वार से आरंभ करके प्रत्येक पक्ष में एक-एक वढ़ाते हुए पाँच वार तक ले जावें।

५—पश्चिमतान — तीन वार से आरंभ करके प्रत्येक पक्ष में एक-एक आवृत्ति वढ़ाते हुए सात वार तक ले जावें और प्रत्येक वार पाँच सेकंड तक आसन स्थिर रखें।

६—अर्धमत्स्येंद्रासन — तीन वार से आरंभ करके प्रत्येक पक्ष में एक-एक आवृति वढ़ाते हुए सात वार तक ले जावें और प्रत्येक वार पाँच सेकंड तक आसन स्थिर रखें।

७—योगमुद्रा — तीन बार से आरम्भ करके प्रत्येक सप्ताह एक एक बार बढ़ाते हुए पाँच बार तक ले जाये तथा दस सेकंड तक प्रत्येक बार स्थिर रक्खे।

आसनों के करने की विधि

शीर्षासन—दोनों पावों की अँगुलियों के भार भूमिपर टेकिये। एड़ी के ऊपर नितम्बों को रखकर घुटने टेक कर बैठ जाइये। अब दांयें हाथ की अँगुलियों को बायें हाथ की अँगुलियों में डालकर अंगुलिवन्ध बनाइये। अंगुलिबन्ध सामने ज़मीन पर रखिये। अंगुलिवंध से दोनों हाथ ६० अंश का कोण बनाते हों, फिर अंगुलिबंध के बिल्कुल सामने सिर के ऊपर के भाग के पिछले हिस्से को टेकिये। अब घुटनों को ऊपर उठाते हुए पांवों की अँगुलियों और जंघों को शरीर के पास लेजाइये, फिर पैरों को जंघे के साथ लगाकर तथा जंघे को पेट और छाती से लगाकर सब शरीर को सिर के भार उठाइये। अब जंघों को ऊपर उठा कर, सिर से जंघों तक लेकर, सब शरीर को एक सीध में लेआइये। अब पाँवों को ऊँचा कीजिये तथा सारे शरीर को सीधी रेखा में खड़ा कीजिये। इसमें सिर के बल सारा शरीर खड़ा होता है। इसको शीर्षासन कहते हैं।

सर्वांगासन—चित लेट जाइये तथा हाथों को शरीर के साथ लगाकर, लम्बा रखिये। अब धीरे धीरे पैरों को एक साथ उठाइये। धीरे धीरे उठाते हुए पैरों को ९० अँश का कोण बनाते हुए, सीधे खड़ा कीजिये। पैरों को उठाते हुए ३०, ६० और ९० अंश पर उनको बहुत थोड़ी देर रोकिये। फिर बाहु तथा केहुनियों का सहारा लेकर सिर के अतिरिक्त बाकी सब शरीर को लम्बी सीध में खड़ा होने तक ऊपर उठाइये। अब केहुनी तक हाथों को ऊपर उठाइये तथा पीठ की ओर से सहारा देकर, उनको सारे शरीर का आधार बनाइये। इसमें ठुड्डी छाती से मिली होनी चाहिए। इस आसन को सर्वांगासन कहते हैं।

अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन—पावों को परस्पर मिलाकर तथा लम्बाकर बैठिये। दाँया पांव घुटने से मोड़कर उसकी एड़ी अंडकोश के नीचे लगा कर रखिये। अब बायें पैर को घुटने से मोड़कर, दांयें पाँव के जांघ के साथ बाहर की ओर खड़ा रखिये। फिर अपने शरीर को बाँयी ओर घुमाइये तथा दाँयें हाथ को बायें घुटने के बाहर से ले जाकर उससे बांयें पाँव को पकड़िये। अब शरीर को और अधिक बांयी ओर घुमाइये तथा सिर को बायें ठुड्डी की ओर आने तक बांयीं ओर ले जाइये। अब बांया हाथ पीठ के पीछे से ले जाकर उससे दाँयाँ हांथ पकड़िये। यही आसन दायें पांव तथा हाथ का काम बायें पाँव तथा हाथ से लेने पर और बायें पाँव तथा हाथ का काम, दांयें पांव तथा हा

लेने पर, विलोम रूप में किया जा सकता है । इसको अर्द्धमत्स्ये-न्द्रासन कहते हैं ।

विपरीतकरणी—चित लेट जाइये, हाथों को शरीर के साथ लम्बा करके रखिये । पांवों को ३० अंश का कोण बनने तक ऊपर उठाइये । यहाँ जरा देर ठहरिए और पाँवों को ऊपर उठाइये तथा ६० अंश का कोण बनने दीजिये । जरा देर ठहर कर पांवों को और ऊपर उठाइये और ९० अंश का कोण बनने दीजिये । इस अवस्था में ठहर जाइये । इसको अर्द्धविपरीत-करणी कहते हैं । अब बाहु तथा कुहनियों की सहायता से शरीर के निचले भाग को ऊपर उठाइये और नितम्बों के नीचे हाथों को लगाकर, उनको नितम्बों का आधार बनाइये ।

हलासन—हाथों को शरीर के साथ लम्बा करके चित लेट जाइये । पैरों को ३० अंश का कोण बनने तक ऊपर उठाइये और जरा ठहरिये । उन्हें फिर ऊपर उठाइये तथा ६० अंश का कोण बनने दीजिये । जरा ठहर कर उन्हें फिर ऊपर उठाइये और ९० अंश का कोण बनने देकर, ठहर जाइये । यह अर्द्ध हलासन हुआ । अब पाँवों को सिर की तरफ़ अधिक झुकाकर उनकी अंगुलियाँ सिर के पीछे जमीन पर टिका दीजिए, (यह हलासन की प्रथम अवस्था है) यहाँ ठहरिये । अब पाँवों की अंगुलियाँ सिर से और दूर ले जाइये (यह हलासन की द्वितीय अवस्था है) । अब पाँव की अंगुलियाँ सिर से जहाँ तक

हो सके, दूर ले जाइये (यह हलासन की तृतीय अवस्था है)। यहाँ ठहरिये । अब दोनों हाथों को सिरकी ओर घुमाकर अंगुलिबन्ध कीजिये तथा सिर के पिछले भाग के साथ लगा दीजिये; अब इसके वाद पांवों की अंगुलियाँ जितनी भी पीछे सिर की ओर सरका सकें, सरकाइये (यह हलासन की चतुर्थ अवस्था है) यहाँ ठहर जाइये। इन चारों अवस्थाओं का अभ्यास कीजिये।

पश्चिमतान—पांवों को लम्बा करके आपस में मिलाकर वैठिये। तर्जनी अंगुली को टेढ़ा करके दायीं अंगुली से दायें पांव का तथा वायीं अंगुली से वायें पांव का अंगूठा पकड़िये। शरीर को आगे झुका कर सिर को पांवों के साथ लगा दीजिये। यह पश्चिमतान कहलाता है।

भुजंगासन—पेट के वल लेटकर सिर को भूमि पर लगा दीजिये। दोनों हाथों की हथेलियों को छाती के दोनों ओर भूमि पर टेक दीजिये। अब सिर को जहाँतक हो सके धीरे धीरे पीछे ले जाइये। इसके बाद छाती को धीरे धीरे ऊपर उठाइये और इसी प्रकार पेट को भी शनैः शनैः ऊपर उठाइये। इसको भुजंगासन कहते हैं।

शलभासन—पेट के वल लेट कर ठुड्डी को भूमिपर लगा दीजिये। हाथों को शरीर के साथ लम्बे तथा उलटे करके मुट्ठियाँ बांध कर श्वास को अच्छी तरह अंदर खींचिए। अब-

सब शरीर को कड़ा करके तथा बाहुओं पर भार डालकर, दोनों पावों को पीछे से जहाँ तक हो सके, उठाइये। इसको शल-भासन कहते हैं।

अर्द्ध शलभासन—यह शलभासन का ही सुगम रूप है। इस में दोनों पैर एक साथ उठाने के स्थान पर बारी बारी से एक पैर उठा कर धरातल से ४५ अंश का कोण बनाने तक उठा कर नीचे लाते हैं।

धनुरासन-पेट के बल सो जाइये और ठुड्डी को भूमि पर टेक दीजिये। हाथों को शरीर के साथ लम्बा करके रखिये। अब सिर को ऊपर उठाइये और पाँव के घुटनों की ओर फेर कर उनके गट्टों को हाथों से पकड़ लीजिये तथा शरीर के सारे भार को पेटपर डालकर, छाती वा जंघों के पिछले भाग को ऊपर उठाकर तानिये। इसको धनुरासन कहते हैं।

मयूरासन—घुटने टेककर तथा उनमें काफी फासला छोड़कर बैठ जाइये। दोनों हाथों को केहुनी तक मिलाकर उनकी हथेलियाँ इस प्रकार भूमिपर टेकिये कि अंगुलियाँ पावों की ओर रहें। अब जुड़ीहुई केहुनियों पर पेट के बीच के हिस्से के मध्यभाग को टेकिये, तथा शरीर को लम्बा करके केहुनियों के ऊपर इस प्रकार अपने शरीर को तौलिये कि वह भूमि के समान अंतर पर रहे। इधर उधर शरीर का भाग न झुके, इसका नाम मयूरासन है।

मत्स्यासन—दायाँ पाँव दाईं जाँघ की ओर ले जाकर उसको इस प्रकार बाईं जाँघ पर रखिए कि उसकी एड़ी पेट के बाएं भाग के निचले कोने को स्पर्श करे। इसीप्रकार बाएं पैर को उसी की जाँघ की ओर लेजाकर उसकी एड़ी को दाईं जाँघ पर इस प्रकार रखिए कि पेट के दाएं भाग के निचले कोने को स्पर्श करे। इसको पदबन्ध कहते हैं। इसप्रकार पदबंध कर चित लेट जाइये। सिर तथा पीठ को पीछे से टेढ़ा करके रीढ़ की हड्डी को कमान के समान बनाइये और तर्जनी को टेढ़ा करके दोनों हाथों से, दोनों पावों के अंगूठों को पकड़िये। इसे मत्स्यासन कहते हैं।

योग मुद्रा—मत्स्यासन में बताए ढंग से पदबंध करे। फिर हाथों को पीठ के पीछे लेजाकर बाएं हाथ से दाएं हाथ की कलाई को पकड़ ले और शरीर को आगे झुका कर पेट के अंदर एड़ियों को दबाए हुए सिर को जमीन पर लगाये। इसे योग मुद्रा कहते हैं। योग मुद्रा करते समय दोनों हाथ पीठ के पीछे रक्खे या पेट के आगे पैरों के ऊपर रक्खे।

शवासन—चित लेट जाइये। हाथ शरीर के साथ लम्बे रखिये। आंखें बंद कर लीजिये और शरीर की सम्पूर्ण नसों को ढीलाकर दीजिये। इसको शवासन कहते हैं।

यौगिक अभ्यास क्रम-संबंधी कुछ आवश्यक सूचनाएं

साधारण बातें

१—जिनके कान में, आँखों में तथा (हृदय निर्बल होने के

कारण) छाती में पीड़ा होती हो उनको शीर्षासन नहीं करना चाहिए। जिनकी नाक हमेशा कफ से बन्द रहती हो उनको शीर्षासन तथा सर्वांगासन अत्यन्त सावधानता पूर्वक करना चाहिए। जिनकी पाचनेन्द्रिय (अर्थात् मेदा) बहुत कमजोर हो, तथा जिनकी तिल्ली (पिलही) बढ़ गई हो, उनको भुजंगासन, शलभासन तथा धनुरासन नहीं करना चाहिए। जिनको कब्ज (मल-बद्धता) की शिकायत रहती हो उनको योगमुद्रा तथा पश्चिमोत्तान बहुत देर तक करना उचित नहीं। जिनके रक्त का दबाव (Blood Pressure) सदा १५० से अधिक वा १०० से कम रहता हो, उन्हें बिना किसी योगानुभवी का परामर्श लिए किसी प्रकार की यौगिक क्रिया नहीं करनी चाहिए।

२—अभ्यास क्रम में प्रत्येक आसन का जो समय दिया गया है उसके आधे समय तक भी उन्हें किया जा सकता है। परन्तु प्रत्येक आसन की पारस्परिक कालमर्यादा एक ही स्थिर रहनी चाहिए।

३—अभ्यास क्रम में दिये हुए आसनों की कालमर्यादा नीचे लिखे ढंग से भी हो सकती है।

शीर्षासन ६ मिनट; सर्वांगासन ६ मिनट; मत्स्यासन १ मिनट; हलासन २ मिनट; भुजंगासन; शलभासन तथा धनुरासन प्रत्येक १ मिनट, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन १ मिनट; पश्चिमतान तथा मयूरासन प्रत्येक १ मिनट; योगमुद्रा १ मिनट।

४—जो सज्जन यह चाहते हों कि यौगिक अभ्यास करने में वहुत कम समय लगे, उनको संक्षिप्त अभ्यास क्रम के अनुसार ही अभ्यास करना चाहिए।

विशेष ध्यान देने योग्य बातें

१—अभ्यास से कभी भी ग्लानि प्रतीत नहीं होनी चाहिए।

२—अभ्यास करने के वाद अभ्यासी के शरीर में पूर्ण उत्साह होना चाहिए तथा मन में शान्ति होनी चाहिए।

३—अभ्यास क्रम की सब क्रियायें वीच वीच में न ठहरते हुये तुरन्त एक के पीछे एक करने की आवश्यकता नहीं, यदि अभ्यास वीच वीच में थोड़ा विश्राम लेकर भी किया जायगा, तो भी लाभदायक ही होगा।

४—वीचवीच में विश्राम लेकर करने पर भी सम्पूर्ण अभ्यास से शरीर पर अधिक तान न पड़े, इस वात की विशेष सावधानी रखनी चाहिए।

५—योगाभ्यासी सज्जनों से मेरा वारवार यह अनुरोध है कि अपनी सामर्थ्य को देख कर आगे वढ़ने का ही साहस करें।

६—यदि किसी कारण से वहुत दिनों तक अभ्यास छूट गया हो, तो पुनः अभ्यास करते समय 'अल्परम्भः क्षेमकरः' इस उक्ति को ध्यान में रख कर, पहले ही दिन निश्चित किया हुआ समय अभ्यास में नहीं लगाना चाहिए। तथापि अभ्यास करने

के प्रथम प्रयत्न करने की तरह मन्दगति से चलने की भी आवश्यकता नहीं।

७—बहुत दिनों तक रोग-ग्रस्त रहने के बाद शरीर में अभ्यास करने योग्य पर्याप्त शक्ति आ जाने पर ही अभ्यास आरम्भ करना चाहिये, ऐसे अवसर पर (अभ्यास आरम्भ करने से पहिले) अभ्यास से किसी प्रकार के दुष्परिणाम की सम्भावना न रहे, इस लिए एक सप्ताह तक प्रति दिन (सुगमता से जितना भी दूर जा सके) भ्रमण करते रहने से पुनः अभ्यास आरम्भ करने में बहुत सुगमता पड़ेगी।

८—गाढ़े पदार्थों का काम चलाने योग्य फलाहार करने पर तथा पतले पदार्थ पेट भर करलेने के बाद डेढ़ घंटे तक कभी भी अभ्यास नहीं करना चाहिए। यदि कोई पतला पदार्थ आधा प्याला ही लिया गया हो तो आधे घंटे के बाद अभ्यास करने में कोई हानि नहीं। पेट भर भोजन करने के बाद कम से कम साढ़े चार घंटे तक अभ्यास आरम्भ नहीं करना चाहिए। यौगिक व्यायाम करने के आधे घंटे के बाद मिताहार करने में कोई हानि नहीं।

स्थान

खुली हवा वाले किसी भी स्थान में योगाभ्यास कर सकते हैं। इस विषय में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वायु का झोंका शरीर पर न लगे।

आसन

योगाभ्यासी सज्जन को योगाभ्यास के समय अपने नाप की एक दरी ले लेना उचित है। प्रतिदिन धोया कपड़े का टुकड़ा उस दरी पर बिछा देना स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा होगा। यदि ज़मीन स्वच्छ तथा न बहुत ठंढी और न बहुत गर्म हो, तो बिना दरी के ही अभ्यास किया जा सकता है।

यौगिक अभ्यास का समय

प्रातः काल की अपेक्षा सायंकाल में शरीर के स्नायु अधिक नरम होते हैं अतः सायंकाल आसन करने से सुभीता पड़ता है। अपने सुभीते के अनुसार प्रातः काल भी किया जा सकता है।

योगासन तथा दूसरे व्यायाम

१—एकही व्यक्ति को यौगिक व्यायाम तथा अन्य स्नायुसंवर्धक व्यायाम करने से किसी प्रकार की भी हानि होने की सम्भावना नहीं है।

२—ये दोनों व्यायाम तत्काल एक के पीछे एक नहीं करने चाहिये, अर्थात् कम से कम दोनों के बीच में बीस मिनट का अन्तर अवश्य होना चाहिये।

३—इन दोनों व्यायामों के पश्चात् जिन्हें सात्विक शांति की अभिलाषा हो, उन्हें यौगिक व्यायाम अंत में करना चाहिए, इसके विपरीत जो सज्जन इन व्यायामों के पश्चात् राजसिक

उत्साह चाहते हों उनको यौगिक व्यायाम पहले करने के पश्चात् दूसरे शारीरिक व्यायाम करना चाहिए।

४—व्यायाम की अभिलाषा से यदि फिरने के लिए जाना हो तो अधिक वेग के साथ चलना चाहिए, अर्थात् इसकी गणना परिश्रम के व्यायामों में होगी। इसलिए ऐसे भ्रमण को खूब परिश्रम का व्यायाम समझ कर यौगिक व्यायाम से पूर्व किंवा पश्चात् करना चाहिए। यदि केवल भ्रमण की इच्छा से ही टह-लना जाना होतो ऐसा टहलना यौगिक व्यायाम के पहिले अथवा पीछे कभी भी किया जा सकता है।

यौगिक व्यायाम तथा स्नान

१—स्नान करने पर तत्काल ही सारे शरीर में रुधिराभिसरण जोर से होने लगता है, इसलिए यौगिक व्यायाम से किसी विशेप भाग में रक्त पहुँचाना सुगम पड़ता है। अतः स्नान करके ही अभ्यास करना अधिक लाभदायक होगा।

२—जो लोग शरीर के किसी एक विशेष भाग में रक्त का अधिक संचय पहुँचाने के उद्देश्य से जलचिकित्सा करते हों, उनको यौगिक अभ्यास से थोड़ी देर पहिले अथवा अभ्यास करने के तत्काल पश्चात् उपर्युक्त जल-चिकित्सा नहीं करनी चाहिए। जिन सज्जनों को उपर्युक्त जल-चिकित्सा तथा यौगिक अभ्यास को साथ साथ चलाने की इच्छा हो उनको किसी योगानुभवी महानुभाव की सम्मति ले लेना उचित है।

खान-पान के कुछ आवश्यक नियम

१—प्रत्येक मनुष्य को (जिह्वा-इन्द्रिय को वश में रखना चाहिए) अपने योग्य आहार का निश्चय करना चाहिए।

२—निरोग मनुष्यों को भी जो पदार्थ अपने स्वास्थ्य के अनुकूल हों उनके ही सेवन का नियम रखना चाहिए। कभी भी आवश्यकता से अधिक खाना नहीं खाना चाहिये। प्रत्येक ग्रास अच्छी प्रकार से चबा चबा कर खाना चाहिये। इससे ग्रास के अंदर उचित परिमाण में मुख की लार मिल जाने से भोजन पचने में बहुत सुगमता पड़ती है।

३—जिनकी पाचनशक्ति अच्छी न हो, उनको सदा हलके ही पदार्थ खाने का नियम रखना चाहिए, और केवल दोही समय भोजन करना चाहिये। यदि एक ही समय भोजन किया जाय तो और भी अच्छा है। दूसरे समय के भोजन के स्थान पर पचने में हलका दुग्धादि अल्पाहार करना चाहिए।

४—अग्निमांद्य, कोष्टवद्धता तथा मूत्राम्ल का रोग होने पर किसी प्रकार की भी दाल नहीं खानी चाहिए, और आलू, बैंगन तथा प्याज का भी सेवन नहीं करना चाहिए।

५—भोजन करने के आधा घंटा पश्चात् जल पीना सब प्रकार की प्रकृति वालों को अनुकूल पड़ता है। जिन सज्जनों की पाचनशक्ति ठीक है वे यदि भोजन करते समय भी जल पीलें तो कुछ हानि नहीं है।

६—मदिरा मात्र को त्याज्य समझ कर किसी प्रकार की भी मदिरा न पीने की पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए। चाय, काफी इत्यादि वस्तुओं का सेवन न करना चाहिये, किन्तु वे यदि सर्वथा न छोड़े जासकें तो कम से कम उनके सेवन में अधिकता कभी भी नहीं करनी चाहिए। जो सज्जन आरोग्यता के महत्व को जानते हैं उनके लिए केवल जल से बढ़कर अधिक लाभ तथा सुखकारी दूसरा कोई भी पीने योग्य पदार्थ है ही नहीं।

७—किसी प्रकार से तम्बाकू सेवन करने की अधिकता लगातार कई वर्षों तक चालू रखने से वह ज्ञानतन्तुओं (Nervous system) को सर्वथा निःसत्त्व बना देती है। अधिक तम्बाकू पीने से ज्ञानतन्तुओं की क्षीणता, दुःसाध्य कफविकार, गले की सूजन इत्यादि रोगों का आक्रमण होने लगता है। थोड़ा तम्बाकू पीने वाले भी प्रायः इन रोगों से नहीं बच सकते।

स्त्रियों के लिये

१—उपर्युक्त अभ्यास क्रम पुरुषों के समान स्त्रियों के लिये भी उतना ही अनुकूल है।

२—मासिकधर्म तथा गर्भावस्था के दिनों में अभ्यास सर्वथा बंद रखना अत्यावश्यक है।

बालक तथा बालिकाओं के लिये

१—बालक तथा बालिकाओं को संक्षिप्त अभ्यास क्रम की

सफलता हो जाने के पश्चात्त ही पूर्ण अभ्यास क्रम का आरम्भ करना लाभकारी है। इस नियम का उल्लंघन करना किसी भी बालक तथा बालिका को उचित नहीं है।

२—बारह वर्ष से नीचे के बालक बालिकाओं को उपर्युक्त अभ्यास में से भुजंगासन, अर्द्धशलभासन, धनुरासन, पश्चिमतान, हलासन तथा योगमुद्रा के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का भी व्यायाम नहीं करना चाहिए। बारह वर्ष से ऊपर के बालक बालिकाएं यौगिक अभ्यास के शेष भाग को भी कर सकते हैं।

विशेष सूचना

उपर्युक्त सम्पूर्ण अभ्यास तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली सूचनायें साधारण निरोगी मनुष्यों के लिए ही हैं। अतः जिनका स्वास्थ्य उतना ठीक न हो उनको संक्षिप्त अभ्यास क्रम का ही आश्रय लेना चाहिए, अथवा यदि किसी योगानुभवी महानुभाव से अपने योग्य अभ्यास का निर्णय करा के उसको ही किया जायगा तो और भी अच्छा होगा।

संक्षिप्त अभ्यास क्रम के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक सूचनायें

१—सम्पूर्ण अभ्यास क्रम करने के लिए जिनके पास समय तथा शक्ति नहीं, अथवा सम्पूर्ण अभ्यास करने की जिनकी इच्छा नहीं उनके लिए संक्षिप्त अभ्यास क्रम है।

२—सम्पूर्ण अभ्यास क्रम के सम्बन्ध में जो जो सूचनायें दी गई हैं वे सब सूचनायें संक्षिप्त अभ्यास क्रम करने के लिए भी समझनी चाहिए।

३—संक्षिप्त अभ्यास क्रम में कहे हुए व्यायाम नौ वर्ष की आयु से आरम्भ किये जा सकते हैं।

४—संक्षिप्त अभ्यास क्रम पुरुषों के समान स्त्रियों के लिए भी उतना ही अनुकूल है।

५—जिनको यौगिक अभ्यास प्रातःकाल करने पर भी अनुकूल न पड़ता हो वे सज्जन यदि चाहें तो सायं प्रातः दोनों समय संक्षिप्त अभ्यास क्रम कर सकते हैं, तथा जिनका प्रातः काल का अभ्यास अनुकूल न पड़ता हो तो उनको सायंकाल अभ्यास करना चाहिए।

६—संक्षिप्त अभ्यास क्रम को यदि और भी कम करना चाहें तो कर सकते हैं, किन्तु उसके कम करने के लिए किसी भी क्रिया को सर्वथा छोड़ देना उचित नहीं है बल्कि उसके परिमाण को ही कम करना चाहिए।

७—संक्षिप्त अभ्यास क्रम से किसी प्रकार की भी हानि होने की सम्भावना नहीं है, किंतु जिनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ चुका हो उनको बिना किसी जानकार की सम्मति लिए केवल अपने ही उत्तरदायित्व पर यह अभ्यास कभी नहीं करना चाहिए।

११—रोगों की उत्पत्ति और चिकित्सा

मनुष्य जीवन के सामने, आरोग्य प्राप्त करने की जो रात-दिन हाय-हाय मची रहती है, यह एक बड़ी अनोखी-सी बात जान पड़ती है। जिसने हमें उत्पन्न किया है, उसी ने संसार के अन्य जीवों की भी रचना की है। पर जहाँ तक हमें पता है, और जहाँ तक हम समझने का ज्ञान रखते हैं, कदाचित् किसी के सामने भी, यह प्रश्न नहीं है। किसी भी प्राणी को स्वस्थ रहने, आरोग्य प्राप्त करने की वह चिंता, रात-दिन सामने नहीं रहती, जो मनुष्य के सामने रहती है। इसका कारण क्या है ?

हम सुखी रहें, हम स्वस्थ और नीरोग रहें, भीषण से भीषण रोगों से भी हमारा सहज में ही छुटकारा हो सके, इसके लिए आकाश के नक्षत्रों की भाँति, छोटे और बड़े, सभी नगरों में दवाख़ानों, औषधालयों और अस्पतालों की संख्या दिखायी पड़ती है, वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों के विज्ञापनबाज़ी के मारे समाचार पत्रों के पन्ने ख़ाली नहीं रहने पाते, फिर भी यह प्रश्न उठता है, क्या मनुष्य स्वस्थ हैं—नीरोग हैं ?

इन प्रश्नों के उत्तर का निर्णय करते-करते, मनुष्य जहाँ पहुँचता है, वहाँ सिवा इसके वह और कुछ नहीं पाता कि मनुष्य रोगी है—वह दुखी है और अस्वस्थ है; अब प्रश्न है, ऐसा क्यों है ? इस परिच्छेद में, इसी का निर्णय करना है।

मनुष्य की दो बड़ी भूलें

मनुष्य जाति के रोगी रहने में दो ही बातें हैं। पहली बात तो यह है कि उसको रोगों का ज्ञान नहीं है। वे क्या हैं, और क्यों होते हैं, मनुष्य के इस ज्ञान का लोप हो गया है। दूसरी बात यह है कि जब उसको रोगों का ही ज्ञान नहीं है, तब वह उनकी चिकित्सा क्या कर सकता है! यही दो बातें उसके सामने हैं। ये दोनों बातें ऐसी नहीं हैं जिनका मनुष्य को ज्ञान न हो सके, हो सकता है, और आज के बहुत दिन पहले, उसको इन बातों का ज्ञान था, लेकिन अब नहीं है। अनेक दिन पूर्व, स्मरणातीत काल में चिकित्सा-शास्त्र के बड़े बड़े ग्रंथों का जो आविष्कार हुआ है यह आविष्कार ही मनुष्य-जीवन की इस कमी का एक मात्र कारण हुआ है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा, यूनानी चिकित्सा, डाक्टरी चिकित्सा—ये तीन चिकित्सायें ही संसार की प्रधान चिकित्सायें हैं। बहुत समय पूर्व इनका आविष्कार हुआ था। उस समय से चिकित्सा शास्त्र में बराबर उन्नति होती आ रही है। इन शास्त्रों का आविष्कार किसी बुरे उद्देश्य से हुआ था, यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन आज सहस्रों वर्षों के बाद, मनुष्य के अधिक रोगी हो जाने का कारण बहुत कुछ इन पर भी निर्भर करता है, यह तो कहा ही जा सकता है! इसी परिच्छेद में कुछ आगे

चल कर, हम इसके सम्बन्ध में यह बताना चाहते हैं कि ये चिकित्सा-शास्त्र किस प्रकार हमारे लिए अहितकर हो जाते हैं।

डाक्टर, वैद्य, और हकीम—अगर ये तीन समाज से अलग कर दिए जाएं तो समाज में उन लोगों की कुछ भी संख्या हीं नहीं रह जाती, जिनको स्वास्थ्य का कुछ भी ज्ञान हो, जो इस बात को जानते हों कि हम बीमार क्यों होते हैं, और उन रोगों से बचने का क्या उपाय है! जो लोग अशिक्षित हैं, यह बात उन्हीं तक नहीं है, वरन जो भली प्रकार शिक्षित कहे जाते हैं, जो शिक्षा-बल से ही समाज में बड़े-बड़े अधिकार प्राप्त करते हैं, यदि उनके सिर में पीड़ा होने लगती है तो तुरंत किसी वैद्य, डाक्टर या हकीम की शरण लेंगे और उस रोग में उनको जैसी व्यवस्था बता दी जायगी, उसी का वे प्रयोग करेंगे। इस प्रकार के कितने ही रोगों को लोग आजीवन भोगा करते हैं, और अपने जीवन के अंतिम दिन तक अपनी विवशता को अनुभव करते हैं। यह बात यहीं तक नहीं है। बड़ी लज्जा की बात तो यह है कि बड़े बड़े लेखक, कवि, आचार्य, नेता, महापुरुष, पण्डित और विद्वान जीवनभर रोगों के शिकार रहते हैं। जिसको अपने शरीर का ज्ञान नहीं है, वह आकाश-पाताल की बातें क्या बता सकता है!

यह तो अनभिज्ञ समाज की अवस्था है। जिनको चिकित्सा शास्त्र का कुछ ज्ञान है, वे डाक्टर, वैद्य, हकीम व्यवसाय के

शिकार हो चुके हैं ! व्यवसाय ने उनको उस लाभ से वंचित कर रखा है जो उनको अपने शरीर के लिए प्राप्त होता और उनके द्वारा समाज के अन्य लोगों का लाभ होता ! चिकित्सा-शास्त्र के द्वारा शरीर के जिन प्रकृत तत्वोंका ज्ञान होता है, उनको जान-कर भी, अपने व्यवसाय के कारण, उनके अनुसार अपने जीवन की व्यवस्था नहीं करने पाते। उनको इस बात का ज्ञान होता है कि हमें शुद्ध और ताज़ी वायु मिलनी चाहिए, परंतु यह जान कर भी अपने व्यवसाय के कारण, वे उन्हीं बड़े-बड़े नगरों की गन्दी, अशुद्ध वायु में सड़ा करते हैं, जहाँ शुद्ध वायु के प्राप्त करने की बात सोचना ही मूर्खता है ! इन वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों के द्वारा समाज की क्या हानि होती है और समाज किस प्रकार दिन पर दिन रोगी होता जाता है, यह बात यहाँ पर भली प्रकार प्रदर्शित की जायगी।

रोग क्या है ?

यदि किसी से पूछा जाय कि आप को यह रोग क्यों हुआ है—रोग क्या होता है और क्यों होता है, तो वह इस प्रश्न को सुन कर हँस देगा। किसी भी रोग के उत्पन्न होने पर जो असमर्थ लोग होते हैं, वे अपनी निर्धनता के कारण, उन कष्टों का सहन करते हैं और जो समर्थ होते हैं वे अपने रुपये-पैसे के बल से, किसी वैद्य, हकीम अथवा डाक्टर की चिकित्सा करते हैं। एक

दो नहीं, जीवन में न जाने कितने रोगों की पीड़ा सहने का अवसर मिलता है, लेकिन उनको इस बात का कभी ज्ञान नहीं होता कि रोग क्या है और क्यों होता है।

इसके सिवा, समाज के बहुत बड़े भाग का यह विश्वास है कि रोग किसी देवी-देवता के अप्रसन्न होने से पैदा होता है अथवा अपने दुर्भाग्य का फल होता है! इन्हीं दो प्रकार की बातों से समाज जकड़ा हुआ है। समाज की यह अवस्था कितनी भयानक है—कितनी करुणापूर्ण है! जब तक मनुष्यों की यह दशा है, तब तक उनके लिए रोगों की उचित चिकित्सा और प्राकृतिक शमन एक असंभव बात है।

चिकित्सा-शास्त्र के आधार पर जितने प्रकार के औषधालय दवाखाने और अस्पताल पाये जाते हैं, उनसे जो कुछ लाभ होने की आशा होती है, वह व्यवसाय में पड़ जाने के कारण बहुत मँहगी हो गयी है, उस लाभ को प्राप्त करने के लिए, जिनके पास पैसे की कमी नहीं है—जो सम्पत्तिशाली हैं और इच्छानुसार रुपये व्यय कर सकते हैं, वही उसको प्राप्त करने के अधिकारी हैं। उसका पहिला दुष्परिणाम तो यही होता है कि साधारण समाज के लोग उसके लाभ से वंचित रहते हैं।

उसका दूसरा परिणाम जो अत्यन्त भयानक होता है, वह यह है कि जो लोग रोगी होते हैं, वे उन औषधालयों की शरण लेते हैं और औषधालयों के द्वारा अपने रोग से मुक्ति पाने की चेष्टा

करते हैं। रोगी का काम होता है वैद्य या डाक्टर की दवा का सेवन करना और वैद्य अथवा डाक्टर का काम होता है उसके रोग को देखकर दवा दे देना ! न तो रोगी अपना काम समझता है कि वह रोग के सम्बन्ध में जाने, कि यह क्यों पैदा हुआ है, और न वह वैद्य डाक्टर अपने लिए रोगी को यह बताना आवश्यक समझता है कि वह रोग के उत्पन्न होने का कारण बतावे, जिससे रोगी को भविष्य में, उस प्रकार के रोग से सुरक्षित रहने का अवसर मिले !

तीसरी बात यह होती है कि औषधियों के द्वारा रोग का प्रतिकार करना, उसे दवा देना बहुत हानिकारक होता है। रोग क्या है और वह क्यों उत्पन्न होता है, इसकी विवेचना करते हुए हम बतावेंगे कि हमारी भूलों के फल-स्वरूप हमारे शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। भूल करके, औषधियों के द्वारा उसका प्रतिकार कराना ठीक वैसा ही है जैसा कि चोरी करके, वकील या बैरिस्टर के द्वारा दण्ड से मुक्त होने की आशा करना ! न्यायालयों में वकीलों के पेशे का फल, समाज पर अच्छा नहीं, बहुत भयानक पड़ा है। किसी को भी चोरी, डाके, हत्या आदि करने का डर नहीं रह गया। सभी इस बात को जानते हैं कि रुपये के बल से और वकीलों की सहायता से, हम अपने अपराध से मुक्त हो सकते हैं। ठीक यही अवस्था समाज में आज रोगों की हुई है। हमारे जिन अपराधों के फल-स्वरूप रोग उत्पन्न होते हैं,

उनका हमें कोई डर नहीं रह गया। हम इस बात का विश्वास करते हैं कि रोगी होने पर न तो वैद्य जः कहीं चले गये हैं और न वैद्य जी का औपधालय कहीं चहा गया है। फिर हमको इस बात की क्या चिंता है कि हमें अपने जीवन में किस प्रकार के संयम-नियम का पालन करना चाहिए। तरह तरह के प्रलोभन हमें जिस ओर खींचकर ले जाते हैं, बिना किसी प्रकार के सोच-विचार के हम उधर ही चले जाते हैं। यदि ये दवाखाने आज न होते—ये औषधालय हमें प्राप्त न होते तो यह बात बिना किसी संकोच के कही जा सकती है कि समाज आज इतना रोगी न होता! जब यह बात मानी जा चुकी है कि मांस और मदिरा के सेवन से हमारे शरीर में अनेक रोग पैदा होते हैं, और जब एक बार उनका सेवन करके हम रोगी हों और उसके कष्टों को हमें सहन करना पड़े तो उसके पश्चात् हम उसके सेवन का कभी भी साहस न कर सकें। एक बार जो किसी बड़ी नदी में डूबते डूबते बच जाता है तो वह फिर अपने जीवन में, तैरना तो दूर रहा किसी भी नदी में उतर कर नहाने का भी वह साहस नहीं करता! यदि हम अपनी असावधानी और भूलों का फल भोगने पावें, तो एक बार भोग कर, दूसरी बार उस प्रकार की नौबत आने का हम फिर अवसर न दें! परन्तु प्रकृति के इस न्याय को स्थान नहीं मिलने पाता। नित्य ही लोग भूलें करते हैं, नित्य ही वैद्यों और उनके औषधालयों के शरणागत होते हैं और किसी

न किसी दवा से उसका अस्थायी शमन करके जीवन भर रोगी रहते और दवा करते रहने के लिए बीजारोपण करते हैं ! इसी का यह भयंकर परिणाम है कि सारा समाज आज रोगी है !

रोग क्या है ? इसको भली प्रकार समझ लेने की जरूरत है। हमारे आहार-विहार और आचरण ही हमारे स्वास्थ्य और रोग के एक मात्र कारण हैं। पुस्तक में अन्यत्र भोजन, जल और आचरणों का विवेचन किया जा चुका है, इसलिए यहाँ पर उनके दुहराने की आवश्यकता नहीं है। हमारे शरीर में रोग उत्पन्न होने के दो प्रधान स्थान हैं पेट और फेफड़े। हमारे शरीर में समस्त विकारों की जड़ इन्हीं दो स्थानों से आरम्भ होती है, और समूचे शरीर में अपना प्रसार कर देती है। यदि हम इन दोनों स्थानों की बनावट समझ लें और उसके पश्चात् उसके विरुद्ध हम कभी आचरण न करें तो हम कभी रोगी नहीं हो सकते।

दूसरी बात यह है कि अपनी किसी असावधानी से यदि हम अपने शरीर में कभी किसी रोग को उत्पन्न होते देखें, तो अपनी थोड़ी सी सावधानी के द्वारा ही उसका पैदा होना रोक सकते हैं और जिन कारणों से वह रोग उत्पन्न हुआ है, उन कारणों को रोक दें तो थोड़े ही समय में उस रोग का मूलोच्छेद हो जायगा।

रोग उत्पन्न होने पर

जब किसी रोग का उत्पन्न होना आरम्भ हो, तो उसके प्रति उपेक्षा नहीं करना चाहिए, और न यही कि उसके लिए किसी वैद्य अथवा डाक्टर के पास दौड़ना चाहिए, वरन् हमें चाहिए कि जैसे हो, हमें उसके कुछ ही लक्षण जान पड़ें, हम तुरंत इस बात का पता लगायें कि इसका कारण क्या हुआ। यह जान सकना कुछ कठिन काम नहीं है। जब हमें यह मालूम हो गया कि पेट और फेफड़ों के द्वारा ही हमारे शरीर में विकार उत्पन्न होते हैं और यदि उनको शुद्ध रखा जाय तो कोई विकार नहीं पैदा हो सकता, तो इसी प्रकार हमें यह भी जानना चाहिए कि किसी भी रोग के पैदा होने में इन्हीं दोनों को शुद्ध करने की आवश्यकता है।

हमारे फेफड़ों को शुद्ध वायु न मिलने पर, हमारे शरीर का रक्त विकृत हो जाता है और रक्त विकृत होने पर फोड़ा, फुन्सी, दाद, खाज आदि भांति-भांति के चर्म-रोग उत्पन्न होते हैं। इन रोगों के उत्पन्न होने का दूसरा कारण इस प्रकार के रोगियों का छुआछूत भी होता है। परन्तु छुआछूत का प्रभाव उन्हीं के शरीर में अधिक और शीघ्रता से पड़ता है जिनके रक्त में विकार होता है। ऐसे रोगों के प्रारंभ होने पर, बिना किसी चिकित्सा की शरण लिए यदि शुद्ध वायु के सेवन से रक्त परिष्कृत किया जाय तो अधिक उत्तम होता है।

पेट की ख़राबी से शरीर में अन्यान्य रोग उत्पन्न होते हैं। यह सब ही को मालूम है कि जो कुछ हम खाते हैं, वह सब पेट में जाकर पचता है। अब यदि हमारा खाया हुआ ठीक-ठीक परिपाक होता है, तब तो ठीक ही है अन्यथा एक बार का खाया ठीक तौर पर न पचने पर, और उसके बाद दूसरी बार खा लेने से, पेट में सड़न पैदा होती है। यह सड़न हमारे सैकड़ों रोगों की जड़ है। जब हमारे पेट में मल सड़ेगा और वह निकल न सकेगा तो विभिन्न रोगों का जन्म होगा। ज्वर का आना, सिर में पीड़ा, आँखों का उठना, अतीसार, संग्रहणी आदि जितने भी रोग हैं, सभी पेट के मल से सम्बन्ध रखते हैं। यदि हमारे पेट में कोई ख़राबी नहीं है और मल की रुकावट नहीं होती तो इस प्रकार का कोई रोग कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता।

यदि हम चाहें, तो अपने पेट को शुद्ध रखकर, होने वाले रोगों से सुरक्षित रह सकते हैं। प्रकृति ने प्रत्येक प्राणी को इस प्रकार की शक्ति दी है कि रोग की अवस्था उत्पन्न होने को वह पहले से ही अनुभव करे। इसके साथ ही प्रकृति ने हमारे पेट, हमारे मानसिक भावों का इस प्रकार निर्माण किया है कि रोग की अवस्था उत्पन्न होते ही, उसको अनुभव करके, स्वयम् उसकी चिकित्सा करलें! यही कारण है कि मनुष्य को छोड़कर किसी भी प्राणी के लिए, न कहीं पर अस्पताल खुले हैं और न धर्मार्थ औषधा-

लय। मनुष्य जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करता है, उसमें रोगी रहना ही सम्भव है। जंगल के जानवरों और आकाश में उड़ने वाले पक्षियों के लिए संसार में कहीं भी औषधियों का कोई प्रबन्ध नहीं है, फिर वे भले-चङ्गे और स्वस्थ क्यों रहते हैं! पालतू पशु मनुष्यों के संसर्ग में आने के कारण, जङ्गली पशुओं की अपेक्षा अधिक रोगी होते हैं। एक वैज्ञानिक विद्वान ने लिखा है कि स्वतंत्र रहने वाले पक्षियों की अपेक्षा, पालतू पक्षी न केवल शक्ति और पुरुषार्थ में कम हो जाते हैं वरन् स्वतंत्र रहने वालों की अपेक्षा उनकी आयु भी कम हो जाती है। इस प्रकार की बातों से स्पष्ट पता चलता है कि मनुष्य का जीवन आज जो इतना दीन हीन, रोग-शोक पूर्ण हो गया है उसका केवल यही कारण है कि वह प्राकृतिक जीवन से बिलकुल पृथक हो गया है।

जब हमारे पेट में मल इकट्ठा होने लगता है, और मेदा साफ़ नहीं होता, तो शरीर के भीतर, कितने ही ऐसे सूक्ष्म अवयव काम करते हैं, वे तुरन्त ही हमें उन बातों की सूचना देते रहते हैं। इस प्रकार की सूचनायें ये हैं—

(१) अपच होने पर खट्टी-खट्टी डकारें आती हैं।

(२) वायु नहीं खुलती, और यदि खुलती है तो उसमें दुर्गन्ध होती है।

उसने कहा कि आज कुछ खाने की इच्छा नहीं है, तो घरों की स्त्रियाँ अथवा खिलाने-पिलाने वाले कहते हैं "तो चलो थोड़ा सा खा लेना, अधिक न खाना।" इस पर आप खाने गये और मीठे, नमकीन चटपटे दार भोजन मनमानो ठाँस-ठाँस कर पेट में भर लिए! इनका फल क्या होगा, यह कौन सोचता है।

हमारे पेट में जो अवयय पाचन-क्रिया का काम करते हैं, जब एक वार उनको पचाने के लिए इतना अधिक भोजन उन पर लाद दिया जाय, अथवा इस प्रकार भी वस्तुएँ खाली जाती हैं, जिनका पचना कठिन हो जाता है तो पचाने वाले अवयव शक्तिहीन और शिथिल हो जाते हैं। इस असमर्थता में जब दूसरी वार भोजन कर लिया जाता है, और पहले का खाया हुआ भी विना पचे हुए, मेदे में पड़ा-पड़ा सड़ा करता है,तो पचाने वाले अवयव अपना काम करना वद कर देते हैं। यही अवस्था रोग पैदा होने की होती है। ऐसे समय पर भोजन करना बन्द कर देना चाहिए और एक दिन, दो दिन, तीन दिन, जैसी आवश्यकता हो, व्रत करना चाहिए। उपवास के पश्चात् अथवा वीच में मालूम होगा कि शरीर हलका हो गया है। खट्टी-खट्टी डकारें अब नहीं आतीं। हाथों-पैरों और समस्त शरीर में फुर्ती जान पड़ती है। पेट किसी प्रकार भारी और असुखकर नहीं वोध होता। मुख का स्वाद अच्छा हो जाता है। वार-वार जो मुख में पानी आता था अब वह नहीं

आता। जब ये सभी बातें स्पष्ट रूप से जान पड़ें तब समझना चाहिए कि अब हमारा पेट साफ़ और शुद्ध हो रहा है।

जब पेट ख़राब हो, मल इकट्ठा होकर भीतर सड़न पैदा करे तो उपवास के साथ-साथ एक हल्का-सा जुलाब अथवा एनीमा ले लेना भी अच्छा होता है। इससे मल बहुत जल्दी और भली प्रकार निकल जाता है। लेकिन जुलाब और एनीमा के सम्बन्ध में कुछ बातों को जान लेना चाहिए। जुलाब कभी कभी हज़म हो जाता है और उससे मल नहीं निकलता। उस समय पेट में और भी गर्मी बढ़ती है। यह गर्मी ही सैकड़ों रोगों का कारण होती है। इसी लिये जुलाब कुछ समझ बूझ कर लेना अच्छा होता है। इसके सिवा जुलाब से मेदा बहुत क़मज़ोर पड़ जाता है, इसलिए जुलाब लेने और ठीक-ठीक तौर पर मल निकलजाने के बाद भी उस समय तक कुछ भी न खाना चाहिए, जब तक कि भोजन को पचाने के लिए मेदे में फिर से शक्ति न आजाय।

अब प्रश्न यह होता है कि मेदे में शक्ति आ जाने की पहचान क्या है—? प्रश्न ठीक है, इस प्रकार की बातें जितनी ही समझ ली जाती हैं, उतना ही उनसे लाभ होता है। जुलाब अथवा एनीमा लेने के पश्चात् बहुत समय तक, भूख की इच्छा बिल्कुल मारी जाती है। ऐसे समय पर, यदि कोई खाने के लिए कुछ कहे भी, तो भी खाने वाला इनकार कर देता है। यह अवस्था मेदे की असमर्थता की होती है। ऐसे समय में समझ लेना चाहिए

कि मेदा अपना काम करने के लिए तैय्यार नहीं है। यह अवस्था सभी में एक-सी नहीं रहती। किसी-किसी की तो यह अवस्था तीन-चार घंटे में समाप्त हो जाती है और उसके पश्चात् मेदा काम करने के योग्य हो जाता है और किसी-किसी का मेदा एक-एक दो-दो दिनों तक ठंढा पड़ा रहता है। मेदा कब फिर काम करने के योग्य हो जाता है, उसकी पहचान यह है कि उस समय खूब खुल कर भूख लगती है। भूख का लगना और न लगना हमारे मेदे पर निर्भर है। जब हमको भूख नहीं लगती, तब हमें समझना चाहिए कि हमारा मेदा काम करने के योग्य नहीं है अथवा उसके पास भोजन इतना अधिक है जिसको अभीतक वह पचा नहीं सका। ऐसी अवस्था में मेदा दूसरे भोजन को पेट में नहीं आने देना चाहता, मेदे की इस अवस्था को हम अनुभव करते हैं और अनुभव करते हैं, भोजन की अनिच्छा। परंतु मेदा जब अपना काम कर चुकता है, अथवा काम करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है, तो वह भोजन चाहता है, उसकी इस इच्छा को हम अनुभव करते हैं और हम भूख-भूख चिल्लाते हैं। यहाँ पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भूख की इच्छा और अनिच्छा क्या है। हमको चाहिए कि भूख की इच्छा न होने पर हम कभी भी भोजन न करें, चाहे हम अपने घर पर हों, चाहे किसी के मेहमान हों। ऐसी अवस्था में भोजन करना ही बीमार होना है।

रोग क्यों होते हैं ?

रोग क्या हैं, जिनको इस बात का ज्ञान नहीं है, वे रोगों को बुरा समझा करते हैं। उनका यह समझना, सर्वथा उनकी भूल है। रोग न तो देवताओं का श्राप है और न ईश्वर का कोप है। हमारी भूल अथवा असावधानी से जब विकृत अंश हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं अथवा हमारे शरीर में ही कोई विकार उत्पन्न हो जाता है, जो हमारे शरीर के लिए विप का काम करता है, तो उस विकार को अथवा बाहर से आये हुए विकृत अंश को बाहर निकालने की आवश्यकता होती है। यदि वह बाहर न निकाला गया तो उससे हमारे शरीर को बहुत शक्ति पहुँच सकती है। इन विकारों और विकृत अंशों को शरीर से बाहर निकालने के लिए हमारे पास कोई भी साधन नहीं हैं, लेकिन प्रकृति ने स्वयं ही इसके लिए प्रबंध कर रखा है। ये रोग प्रकृति के नियम और प्रबंध हैं जो हमारे शरीर के भीतर से उन विकारों और विकृत अंशों को बाहर निकालने के लिए उत्पन्न होते हैं! यदि विचार करके देखा जाय तो समझा जा सकता है कि प्रकृति ने रोगों की व्यवस्था करके हमारे शरीरों को और भी सुरक्षित बना दिया है। ये रोग प्रकृति के रचना-कौशल का अनोखा प्रमाण है, परंतु उससे लाभ उठाने और प्रकृति के अनुगृहीत

होने के स्थान पर हम रोगों को कोसा करते हैं ! कितनी बड़ी मूर्खता है !!

हमारे शरीर में रोग क्या काम करते हैं ?

हमारे पैर में जब कोई काँटा लग जाता है तो हम चिमटी अथवा अन्य कोई चीज़ लेकर, उस काँटे को निकालने बैठते हैं। उस समय काँटा निकालते हुए, हमारे पैर में कुछ कष्ट तो होता है परंतु उसके निकल जाने पर, सदा के लिए वह कष्ट दूर हो जाता है। इसी प्रकार हमारे शरीर के जिस अंग में विकार उत्पन्न हो जाते हैं अथवा बाहर से किसी प्रकार हमारे उस अंग में कोई विकार प्रवेश कर जाते हैं, तो उस अंग में कोई न कोई रोग उत्पन्न हो जाता है। उस समय हमें उस रोग से कुछ कष्ट तो अवश्य होता है, लेकिन उस रोग के द्वारा उस अंग से उस विकार का नाश होता है। वह रोग उस विकार को शरीर से निकाल कर बाहर करता है। यही उस रोग का काम है। ये रोग हमारे कितने हितकर हैं, हमारे शरीर के कितने शुभचिंतक हैं, इसका कभी हम विचार तक नहीं करते, उलटा, वैद्यों-हकीमों की पुड़ियों और शीशियों के द्वारा इस बात की चेष्टा करते हैं, कि वह रोग नष्ट हो जाय !

जब हमारे पेट में अपच के कारण सड़न पैदा होती है और उससे जो गर्मी बढ़ती है, वह समस्त शरीर में फैल जाती है यदि

उस गर्मी को किसी प्रकार न निकाला जाय, तो शरीर को क्या क्षति पहुँच सकती है, इसका अनुमान लगाना कठिन है, इसीलिए ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर ज्वर का प्रकोप होता है। यदि इस ज्वर की चिकित्सा न की जाय, तो ज्वर शरीर से उस सड़न को निकाल कर शुद्ध कर देगा। जब तक विकार बना रहेगा, ज्वर अपना काम करता रहेगा और जब विकार कम हो जायगा, तो ज्वर भी कम होने लगेगा। इसी प्रकार धीरे-धीरे ज्वर उस विकार को दूर करके अपने आप जाता रहेगा। परन्तु मनुष्य तो स्वयम् बुद्धिमान है। वह प्रकृति की बुद्धिमानी को कैसे सहन कर सकता है! जिस प्रकृति ने हमारे शरीर की रचना की है, वही, विकार प्राप्त होने पर—शरीर के अशुद्ध विकृत होने पर, वही प्रकृति हमारे शरीर की चिकित्सा भी करती है। परंतु हमें प्रकृति की चिकित्सा स्वीकार ही कहाँ है! इसीलिए मनुष्य-समाज ने चिकित्सा-शास्त्र के बड़े-बड़े पोथे लिखकर रख छोड़े हैं! उन चिकित्सा-शास्त्रों के अनुसार उन रोगों की दवा की जाती है जो हमारे शरीर को शुद्ध और विकारहीन करने के लिए आते हैं!! कष्ट के समय जो हमारी सहायता करने को आये हम उसीको लाठी लेकर मारने का उपक्रम करें! ये चिकित्सा-शास्त्र, उन रोगों के लिए लाठियों का काम करते हैं!!

हमको रोगों की चिंता करने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। प्रकृति स्वयम् उनकी व्यवस्था करती है। किसी मनुष्य को

प्राकृतिक जीवन विताने दिया जाय और वह मनुष्य प्रकृति की उन सभी बातों का यथा समय पालन करता रहे, जिनको प्रकृति चाहती है और जिनके लिए प्रकृति हमारे शरीर में एक प्रकार की सुखकर और असुखकर पीड़ा को उत्पन्न करती है, मनुष्य केवल उसकी आज्ञा का पालन करता रहे। प्रकृति चाहती है कि हमें सुन्दर, शुद्ध वायु मिले, इसी लिये जहाँ कहीं दुर्गन्धपूर्ण, अशुद्ध वायु हमारी नाक में प्रवेश करती है, उसी समय हमारी नाक हमको बताती है कि यह बहुत खराब है, पर हम उसका क्या उपाय करते हैं! मनुष्य की नाक गन्दे स्थानों में रहने के लिए विरोध करती है, किन्तु क्या हमारे जैसे लाखों आदमियों की भीड़ शहरों में नहीं सड़ा करती! ऐसी अवस्था में, प्रकृति और कर ही क्या सकती है! लेकिन प्रकृति क्या चाहती है—हमारे शरीर के लिए क्या हितकर है और क्या अहितकर इसका ज्ञान प्रकृति हमको एक-एक क्षण पर कराती रहती है। उसी ज्ञान के अनुसार उस मनुष्य का जीवन व्यतीत होने दिया जाय, तो पहली बात तो यह होगी कि उस मनुष्य को कभी रोग ही न होगा, और यदि कभी किसी रोग का आक्रमण हो, तो उसकी चिकित्सा करने की आवश्यकता नहीं है। प्रकृति अपने आप उसकी व्यवस्था करती है। परंतु इस बात का ध्यान रहे कि प्रकृति के हम पूर्णतः अनुयायी बनें। यदि किसी को ज्वर आजाय अथवा और कोई रोग उत्पन्न हो जाय और उस अवस्था में

हमें भूख न रहे, तो हमको बड़ी प्रसन्नता के साथ उपवास करना चाहिए। प्रकृति स्वयम् इस प्रकार की बातों के लिए समय-समय पर आदेश देती है, उस आदेश को हम समझते हैं, परंतु परवा नहीं करते।

इस प्रकार हम देखेंगे कि शरीर हमारे लिए किसी प्रकार का बोझा नहीं है। वह तरह-तरह की बीमारियों का घर नहीं है। बीमारियों का घर तो हम उसे बना देते हैं। हम अपनी बुद्धिमानी से भूलें करते हैं और जब उसके परिणाम में रोग उत्पन्न होते हैं तो दूसरी भूल उसकी चिकित्सा में करते हैं। हमारी पहली भूल चोरी करने की होती है और उससे भी बड़ी, दूसरी भूल उससे बचने की होती है! यदि हम अपराध करते हैं तो हमें उसका भोग करना चाहिए, ऐसा करने पर ही हम उस पाप से मुक्त हो सकते हैं। हम प्रकृति के विरुद्ध अपराध करते हैं और उससे बचने की चेष्टा करते हैं! मनुष्य-जीवन का कितना बड़ा आडम्बर है!

यद्यपि समय—असमय कुछ बातों में चिकित्सा-शास्त्र से हमारा कुछ उपकार भी हो सकता है तथापि उससे समाज के सर्व साधारण वंचित हैं, इसका कारण यह है कि उसका उपयोग और प्रयोग पैसे वालों के लिए है और रुपये-पैसे के प्रश्न ने मनुष्य के जीवन को और भी भीरु, अनुदार तथा कायर बना डाला है। उसकी कठिनाइयाँ और आवश्यकतायाँ इतनी अधिक हो गयी हैं

कि वह अपनी ही आपदाओं-विपदाओं में रात दिन विकल-संतप्त रहता है। इसलिए जो लोग रोगों के प्रतिकार और स्वास्थ्य की वृद्धि के लिए किसी प्रकार की कुछ व्यवस्था ही चाहते हैं, उनके लिए पिछले परिच्छेदों में जल के प्रयोग और ऋषियों के निर्धारित किये हुए आसनों के रूप में कुछ शारीरिक क्रियाओं के प्रयोगों का विवेचन किया गया है, जो रोगों के प्रतिकार और स्वास्थ्य की वृद्धि में संसार की प्रसिद्ध और सर्वमान्य वैज्ञानिक मीमांसा है।

१२—कुछ भयानक बीमारियाँ

कुछ बीमारियाँ ऐसी भयंकर होती हैं जो मनुष्य की सहज ही मृत्यु का कारण होती हैं, उनके इतना विषपूर्ण होने में आश्चर्य नहीं है, जितना आश्चर्य इस बात में है कि मनुष्य को उनके कारणों का कुछ ज्ञान नहीं होता। इसका फल यह होता है कि मनुष्य कदाचित् निरपराध अवस्था में ही अपने मूल्यवान जीवन के खो देने का कारण बन जाता है। मनुष्य की यह अवस्था कितनी दयापूर्ण होती है—कितनी निरपराध होती है यदि उसे इन बातों का ज्ञान हो तो अपने प्राणों की वह सहज ही रक्षा कर सकता है। इस प्रकार की बीमारियाँ कौन-सी हैं, उनके पैदा होने के कारण क्या हैं और किस प्रकार उनका निवारण किया जा सकता है, इस परिच्छेद में इन्हीं बातों की मीमांसा होगी।

रोग और उनके फैलने के कारण

हैजा, प्लेग, चेचक, जूड़ी-बुखार, पेचिश और खुजली आदि कुछ रोग बड़े भयानक होते हैं। इनके पैदा होने के दो कारण होते हैं, एक तो खाने-पीने की गड़बड़ी से और दूसरे अपनी असावधानी से। इन दोनों बातों में प्रायः अधिकांश लोग अनजान रहते हैं और अपनी अनजान अवस्था में ही उनको मृत्यु

का शिकार बन जाना पड़ता है। ऊपर बताये गये दोनों कारणों पर कुछ प्रकाश डालने की यहाँ आवश्यकता है—

भयंकर बीमारियों का पहला कारण खाने-पीने की गड़बड़ी बतायी गयी है। वह गड़बड़ी इस प्रकार है—हम लोग अपने स्वाभाविक भोजन के विरुद्ध व्यर्थ की चीजें खाते हैं जो हमारे अनुकूल नहीं होतीं, जैसे माँस-मदिरा आदि, इनका फल भी इस प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न करता है। जिन दिनों में हैज़ा फैलता है, उन दिनों में जो भोजन इस प्रकार नहीं करते कि उनको पाचन सम्बन्धी कठिनाइयाँ न हों, तो समझ लेना चाहिए कि वे उन बीमारियों का एक कारण पैदा करते हैं। हल्का और पाचक भोजन सदा बीमारियों से रक्षा करता है। विशेषकर जिन दिनों में बीमारियाँ अधिक फैलती हैं, गर्मी और बरसात के दिनों में जब लोग लगातार बीमार होते हैं, उन दिनों में यदि अपने भोजन कम कर दें, जो कुछ खायें भी, तो बहुत पाचक वस्तुएँ। इस प्रकार की ऋतु के आने के साथ ही और यदि हो सके, तो कुछ पहले ही जुलाब अथवा एनीमा देकर पेट की सफ़ाई कर डालें तो उनके लिए बहुत अच्छा हो। ऐसा करने से बीमारी पैदा होने के आधे कारण अपने आप रुक जाते हैं।

रोगों के कीटाणु

इस प्रकार की बीमारी के दिनों में भोजन-सम्बन्धी दूसरी

गड़बड़ी यह है भोजन के द्वारा हमारे शरीर में इस प्रकार के भयंकर रोगों के छोटे-छोटे कीड़े हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। शरीर के भीतर पहुँचने के लिए कई रास्ते हैं। वे कीड़े खाद्य पदार्थों के द्वारा हमारे पेट में पहुँच जाते हैं, सांस के द्वारा हमारी नाक से जाकर रक्त में मिल जाते हैं। हमारे शरीर में जो फोड़ाफुन्सी आदि के ज़ख़म होते हैं, उनके मार्ग से भीतर चले जाते हैं और कुछ हमारे शरीर में के रोम-कूपों में बैठकर शरीर के भीतर अपना विष फैलाते हैं।

किसी एक स्थान पर हैज़ा, प्लेग या चेचक की बीमारी फैलती है, किंतु एक ही दो दिन में, वह बीमारी उस शहर, कस्बा या गाँव में फैल जाती है, इस प्रकार होता यह है कि रोगी को जहाँ यह रोग पकड़ता है तो उसके साथ ही, उस घर में, पास-पड़ोस में दो-चार आदमी और रोगी होते हैं। इनके रोगी होते ही रोगियों की संख्या बढ़ते देर नहीं लगती। इसका कारण क्या है? सभी को यह बात खूब समझ बूझ लेनी चाहिए। इस प्रकार की बीमारी को फैलानेवाली मक्खियाँ, पिस्सू और मच्छड़ होते हैं। मक्खियों, पिस्सुओं और मच्छड़ों के शरीरों में हैजा, प्लेग, चेचक आदि आदि रोगों के फैलाने वाले, नन्हें नन्हें कीड़े सैकड़ों नहीं, हजारों की संख्या में चिपक जाते हैं। बात यह होती है, किसी एक घर में कोई एक आदमी हैज़े में बीमार होता है, उस रोगी को बार-बार पाख़ाना और उल्टी होती है

रोगी के पाखाने और कै में हैजे के नन्हें नन्हें लाखों कीड़े होते हैं जो बिना सूक्ष्मदर्शक यंत्र के दिखाई नहीं पड़ते। उस पाखाने और कै में हजारों, लाखों मक्खियाँ बैठती हैं। उनके बैठते ही हैजे के वे छोटे छोटे कीड़े, उनके शरीर में चिपक जाते हैं। सूक्ष्मदर्शक यंत्र के द्वारा देखा गया है कि इस प्रकार के नन्हें कीड़े जो मक्खियों के शरीर में लिपट गये हैं, उनकी संख्या दस हजार से भी अधिक हुई है। मक्खियाँ उन कीटाणुओं को लिए हुए उड़ती हैं और पानी के बरतनों, खाने के पदार्थों पर बैठती हैं और उनके बैठते ही, उनके शरीर से हजारों कीड़े उन वर्त्तनों और खाने की चीजों में गिर जाते हैं। मनुष्य उन्हीं वर्त्तनों में खाना खाते हैं, खाने की उन चीजों को खाते हैं और बीमार पड़ते हैं। कई वर्ष की बात हुई, इनफ्ल्युएञ्जा की बीमारी हुई थी, अभी बहुत पुरानी बात नहीं है, लोगों को स्मरण होगा, जिस शहर, कस्बे और गाँव में उसका आरंभ हुआ और एक आदमी बीमार हुआ, बस यह दशा होगयी कि उस शहर और कस्बे में कदाचित् ही कोई बीमार होने से बचा हो, चार चार, छः छः आदमियों के घर में, कोई किसी को पानी देने वाला न रहा था। मृत्यु इतनी अधिकता में हुई कि घरों से मुर्दा ढोनेवाले न मिलते थे। यदि म्युनिसिपल बोर्डों की ओर से मुर्दा ढोने का प्रबन्ध न होता, तो साधारण परिवारों के घरों में मुर्दे घरों में ही पड़े सड़ा करते! इस प्रकार की बीमारी

के फैलने का और कोई कारण नहीं होता, सिवा इसके कि एक आदमी के बीमार होते ही, मक्खियों, मच्छड़ों और पिस्सुओं ने रोग के कीटाणुओं को सर्वत्र फैला दिया और उसके फल-स्वरूप चारों ओर, एक साथ ही बीमारी फैल गयी।

ये मक्खियाँ मच्छड़ और पिस्सू कितने ही तरीकों से बीमारियां फैलाते हैं। जब ये बीमारियां शहर, कस्बों में फैली होती हैं, और ऊपर जैसा बताया गया है, उन रोगियों के पाखाने और क़ै से लाखों नन्हें-नन्हें कीड़ों को लेकर मक्खियाँ बाजार की दूकानों में बैठती हैं तो उनके पैरों-पंखों में चिपके हुए सभी कीटाणु उन चीज़ों में गिर जाते हैं। ऐसी अवस्था में जो स्वस्थ और नीरोग आदमी उन बाज़ार की चीजों को मोल लेकर खाते हैं, बीमार हो जाते हैं।

मक्खियों की भाँति रोग के कीटाणु पिस्सू और मच्छड़ों के शरीर पर भी चिपक जाते हैं, इनकी संख्या और भी अधिक होती है। ये पिस्सू और मच्छड़ जब आदमियों के बदन पर बैठते हैं और काटते हैं, तो उनके काटने से जो रक्त निकल आता है, पिस्सुओं मच्छड़ों के बैठने से उनके शरीर में हज़ारों कृमि-कीटाणु उसी रक्त में चिपक जाते हैं, और रक्त आने के मार्ग से, शरीर की खाल में प्रविष्ट हो जाते हैं। प्रायः यह होता है कि पिस्सुओं और मच्छड़ों के काटने पर लोग बड़े ज़ोर से हाथ

मारते हैं जिससे वे पिस्सू और मच्छड़, हाथ की चोट खाकर, शरीर में जहाँ बैठे होते हैं, वहीं मर जाते हैं, और उनके शरीर में लिपटे हुए गणनातीत रोग-कीटाणु उसी जगह रह जाते हैं। इन पिस्सुओं और मच्छड़ों के शरीर में ये रोग-कीटाणु जब सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखे गये हैं, तो एक-एक मच्छड़ के शरीर में कई-कई हजार कीटाणु पाये गये हैं।

रोग-कीटाणुओं से बचने का उपाय

ऊपर की पंक्तियों में यह बताया गया है कि मक्खियों, मच्छरों आदि के कारण किस प्रकार बीमारियाँ फैलती हैं और स्वस्थ मनुष्य किस प्रकार उनके शिकार हो जाते हैं, अब प्रश्न यह है कि इन रोग-कीटाणुओं से किस प्रकार अपनी रक्षा करनी चाहिए?

मक्खियों, मच्छरों के कारण ये बीमारियाँ फैलती हैं। परन्तु इन मक्खियों और मच्छरों को अपने घर अथवा स्थान में आने से रोका कैसे जाय? किसी बड़े और भयंकर जानवर का आना रोका जा सकता है, किसी शत्रु को अपने समीप आने न दिया जाय, यह हो सकता है लेकिन मक्खियों को कैसे रोका जाय? यह प्रश्न साधारण नहीं है।

कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ मक्खियाँ न हों और कोई भी ऐसी जगह नहीं है जहाँ पर मनुष्य रहें और मक्खियाँ वहाँ न पहुँच सकें। जहाँ पर लोग रहते हैं, उनका खाना-पीना होता

है, वहाँ पर मक्खियाँ अवश्य ही रहती हैं। परन्तु इसके साथ देखना यह है कि मक्खियाँ अधिक कहाँ रहती हैं? यह बात सभी जानते हैं कि जिस स्थान पर गन्दगी अधिक होती है, मल-मूत्र पड़ा होता है, खाने-पीने की चीजें रखी जाती हैं जहाँ पर भोजन बनाया और खाया जाता है, ऐसे स्थानों पर मक्खियाँ बहुत रहती हैं, इनके सिवा, जहाँ पर जानवर बांधे जाते हैं, जहाँ पर उनके मल-मूत्र की गन्दगी रहती है, वहाँ पर मक्खियाँ अधिक रहती हैं, इसी प्रकार शक्कर गुड़ मिठाई और खाने-पीने की दूकानों पर मक्खियां बहुत अधिक रहा करती हैं। मक्खियों के इन रहने के स्थानों को जान कर यह समझा जा सकता है कि मक्खियों को पहुँचने और इकट्ठा होने के लिए क्या चीजें चाहिए। यह जानकर और समझ कर मनुष्य मक्खियों से अपनी रक्षा कर सकता है; जो मक्खियों से अपनी रक्षा कर सकता है वह रोग-कीटाणुओं से अपने आपको बचा सकता है।

जो जितना ही अपना घर और रहने का स्थान साफ़-सुथरा रख सकता है, खाने-पीने की वस्तुओं के रखने का ढँग इस प्रकार काम में ला सकता है कि उनके कारण मक्खियों को आने और इकट्ठा होने का अवसर न मिले। रहने के स्थानों और घरों में खाने-पीने की चीजें, उनके टुकड़े अथवा मल-मूत्र एक मिनट भी न पड़ा रहे जिससे मक्खियाँ आवें और उस पर अथवा स्थान को अपने रहने का स्थान बनावें, इस प्रकार का

प्रबंध रखने से मक्खियों, मच्छरों से अपनी रक्षा करके रोग-कीटाणुओं से अपने आप को, परिवार को और साथ ही टोला-पड़ोस को भयंकर बीमारियों से बचाया जा सकता है।

इसके सिवा, जहाँ पर हम रहते हों वह स्थान गंदा न हो, वह सड़क गंदी न हो, वह गली गंदी न हो, वह टोला गंदा न हो, अपने घर का पड़ोस गंदा न हो। गंदगी के जितने भी कारण हो सकते हैं और ऊपर जितने भी कारण बताए गये हैं उन सब से अपना आस-पास, टोला-पड़ोस, अपने रहने की गली और सड़क सुरक्षित होने पर अपने घर की सफ़ाई देखना चाहिए क्योंकि यदि हमारा घर ही इस प्रकार की गंदगी से सुरक्षित रहा, और घर से सम्बन्ध रखने वाले स्थान साफ़-सुथरे न हुए तो उससे अधिक रक्षा न समझना चाहिये। सड़ने-गलने और दुर्गन्ध देने वाली वस्तुयें घर में न रखनी चाहिये, जो चीजें रखने की हों और वे खराब होने लगें तो उनको तुरंत धूप में डाल कर खूब सुखा लेना चाहिए। ऐसा करने से उनकी दुर्गन्ध जाती रहेगी। इस प्रकार यदि सावधानी के साथ प्रबन्ध किया जाय तो रोग-कीटाणु लाने वाली मक्खियों और मच्छरों से रक्षा हो सकती है।

रोगियों के रखने का प्रबन्ध

यदि किसी घर में कोई आदमी रोगी हो जाय तो उसके रखने का ढङ्ग ऐसा होना चाहिए जिससे उस रोगी के रोग-कीटाणु

दूसरे मनुष्यों तक न पहुँचने पावें, क्योंकि यह तो निश्चय ही है कि रोगी को यदि सावधानी के साथ न रखा जायगा तो उससे न जाने कितने लोग रोगी होंगे। इस लिए उसके रखने का प्रबंध इतना सुरक्षित करना चाहिए जिससे रोग के कीटाणु दूसरे मनुष्यों तक न पहुँचने पावें।

यदि किसी को हैजा हो जाय तो उसके पाखाने और क़ै को कुछ ज़मीन खोद कर डाल देना चाहिये और उस पर कम से एक हाथ ऊँची मिट्टी डाल कर उसे बंद कर देना चाहिये। यदि सम्भव हो सके, यद्यपि उसके करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है, थोड़ी सी सावधानी रखने से, आसानी से किया जा सकता है, तो एक गड्ढा रोगी के पास ही खोद देना चाहिए, यह गड्ढा दो फ़ुट से कम गहरा न होना चाहिए। जब रोगी क़ै करे अथवा पाखाना करे तो कै और पाखाने के लिए, उसी गड्ढे में विठाना चाहिए। और रोगी के हटते ही उस गड्ढे में काफ़ी मिट्टी छोड़ देना चाहिए।

यदि गड्ढे का प्रबन्ध न हुआ हो और रोगी कै अथवा पाख़ाना करे तो उसको योंही न पड़ा रहने देना चाहिए, वरन् रोगी के हटते ही उसमें ढेर-सी मिट्टी छोड़ कर, उसको तोप देना चाहिए इसके पश्चात् एक बड़ा-सा गड्ढा खोद कर, उस कै और पाखाने को, जिस पर मिट्टी छोड़ी गयी थी, उसी गड्ढे में डाल कर उस पर पर्याप्त मिट्टी छोड़ देना चाहिए। ऐसा करने से मक्खियों

तो उस कै और पाखाने पर बैठने का मौक़ा न मिलेगा और उसमें मिट्टी छोड़ देने से उसके कीटाणु नीचे ही दब कर मर जावेंगे।

यदि ऐसा न किया जायगा तो किसी एक मनुष्य के रोगी होते ही, पहले तो उसी घर के अन्य आदमी और स्त्रियाँ बीमार होंगी और उनके बीमार होते ही, बीमारी का फैलाव टोला-पड़ोस तक पहुँचेगा और धीरे-धीरे सारी बस्ती तथा नगर में फैल जायगा।

यह रोग दूसरों में न फैले, इसके लिए थोड़ा सा और भी सावधान होने की आवश्यकता है। जिसके घर का कोई आदमी रोगी होता है तो उस घरके सभी लोग, उस रोगी के पास आने-जाने और उठने-बैठने में किसी प्रकार का कुछ परहेज नहीं करते, यह बात कम हानिकारक नहीं है। इसमें प्यार और स्नेह की कोई बात नहीं है। रोग एक प्रकार का विष है, जब किसी आदमी को इस प्रकार का कोई रोग हो जाता है; तो वह विष के अणु उस रोगी के मुँह से निकलने वाली श्वास प्रश्वास में पाये जाते हैं, इसी लिए इन बातों से सावधान रहने की आवश्यकता है। वैद्य, हकीम या डाक्टर जब किसी रोगी के पास जाते हैं, तो उस रोगी के रोग-कीटाणु अथवा रोगाणु अपने ऊपर आक्रमण न कर सकें, इसके लिए काफ़ी सचेत रहते हैं। इसी प्रकार यदि हैज़ा, प्लेग, चेचक आदि रोगों के रोगी के पास जाने की आवश्यकता पड़ जाय तो रोगी के मुँह और नाक से निकलने वाली

श्वास का परहेज़ करना चाहिए। प्रायः लोग रोगी के पास बैठ कर और रोगी के मुँह में मुँह लगाकर बातें करते हैं, यह दशा अच्छी नहीं होती।

इसके सिवा, रोगी के पास जाकर, उसके वस्त्रों से अपने आप को कुछ पृथक रखना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, अधिक देर तक न रहना पड़े, इसका ध्यान रखना चाहिए। यदि अपने हाथों से दवा खिलाने आदि का कुछ काम करना पड़े तो वहाँ से निकल कर अपने हाथों को साबुन अथवा मिट्टी लगा कर खूब धो डालना चाहिए।

बीमारी की रुकावट

संयोग से यदि कहीं पर हैज़ा की बीमारी पैदा हो जाय तो उस स्थान या गाँव के रहने वालों को मिलकर ऐसा प्रबंध करना चाहिए कि जिससे बीमारी की कुछ रुकावट हो और साधारण स्त्री-पुरुषों को, उन बातों के बताने की चेष्टा करे, जिससे वे सचेत होकर रहें। ऐसे समय में निम्नलिखित बातों का प्रबंध करना चाहिए—

(१) प्रायः देखा जाता है, कि कुओं के पानी में और गृहस्थों के घरों में पानी रखने वाले बर्तनों में, अत्यंत छोटे-छोटे कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं ये कीटाणु पानी के निम्न भाग में एकत्रित रहते हैं और जब पानी हिलता है तो वे पानी की हिलोर

के साथ सर्वत्र फैल जाते हैं। इसलिए चाहे कुए का पानी हो अथवा अपने घर में घड़े का हो, पानी को एक बार उबालकर और फिर उसको किसी साफ़ बर्तन में भरकर रख दे, जब ठंढा हो जाय तो उसी को पीने के काम में लावे। गर्म किया पानी भी वासी न पीना चाहिए। क्योंकि उसमें फिर कीटाणु पैदा हो जाने का डर रहता है। ये कीटाणु इतने छोटे होते हैं कि जब तक सूक्ष्म दर्शक यंत्र से नहीं देखे जाते, तब तक दिखाई नहीं देते। किंतु वही कीड़े जब बहुत बड़े हो जाते हैं तो देखने से भी दिखाई देते हैं और पानी में तैरते हुए मालूम होते हैं। इसलिए पानी बिना उबाले न पिया जाय, इसका बहुत ध्यान रखना चाहिए।

(२) इस बात का खूब ध्यान रखा जाय कि भोजन रखा हुआ, ठंढा और बासी न खाया जाय। पहले बताया जा चुका है कि मक्खियाँ रोग-कीटाणु अपने साथ ला-लाकर, जहाँ कहीं खाने-पीने की चीज़ों पर बैठती हैं, तो वे रोग-कीटाणु उसी खाने में रह जाते हैं और जब कोई आदमी उन चीजों को खाता है तो वे कीटाणु, एक स्वस्थ आदमी के शरीर में प्रवेश करते हैं। इसलिए, इन दिनों में विशेपरूप से, शुद्ध और ताज़ा बना हुआ भोजन करना चाहिए और इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि खाने-पीने की कोई चीज़ खुली न रखी रहे, जो उस पर सैकड़ों मक्खियाँ भनभनाया करें। यदि इस प्रकार की कोई

वस्तु हो तो चीज़ का नुकसान हो जाय, यह अच्छा, परंतु उसको खाकर बीमार होना अच्छा नहीं।

(३) दूध, दही और शक्कर आदि पर मक्खियाँ बहुत बैठती हैं, इस प्रकार की चीज़ों को खुला कभी न रखें। और इस बात का ध्यान रखे कि जिस चीज़ पर मक्खियाँ अधिक बैठी हों, उस चीज़ को खाने के काम में न लाया जावे। दूध को तुरन्त उबाल कर और कुछ ठंडा करके पी लेना चाहिए। किंतु ऐसा न करके, उसे खुला रख देना और उसे कुछ देर में पीना हानिकारक होता है।

(४) बाजार की पूड़ी-कचौड़ी तथा अन्य किसी प्रकार का पक्वान्न और मिष्ठान्न तथा खोन्चे की चीजें कोई भी न खाना चाहिये, उन दिनों में इन चीज़ों को जिसने खाया वही बीमार हुआ।

(५) अपने पेट को जहाँ तक हो सके, खाली रखे, बहुत भूख लगने पर, पाचक भोजन करे, गरिष्ठ और देर में पचने वाले भोजनों से परहेज़ करे।

(६) भरसक ऐसे स्थान पर रहे जहाँ की वायु शुद्ध हो, ताजी हो, मन प्रसन्न हो, किसी प्रकार की मानसिक चिन्ता-ग्लानि न हो।

हैज़े का प्रकोप और उसकी चिकित्सा

हैज़े का आक्रमण होते ही क़ै और दस्त आने लगते हैं, मूत्रावरोध हो जाता है। पैरों में ऐंठन होती है, शरीर में सुई कोंचने की-सी पीड़ा होती है, प्यास बहुत लगती है। चक्कर आते हैं। बार-बार जम्हाई आती हैं, चेहरा उतर जाता है, शरीर काँपता है। हृदय में एक प्रकार की निर्बलता का बोध होता है।

हैज़ा एक भयानक बीमारी है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। इसका आक्रमण होते ही तुरन्त चिकित्सा का प्रबन्ध करना चाहिए, इस पुस्तक में आरम्भ से लेकर अन्त तक प्राकृतिक चिकित्सा पर ज़ोर दिया गया है, पुस्तक के लेखक का प्राकृतिक चिकित्सा पर विश्वास ही नहीं है, अनुभव भी है। इसलिए, यदि दैवयोग से किसी पर हैज़े का आक्रमण हो तो उस रोगी को कुए के शीतल से शीतल पानी में जल-चिकित्सा के नियमानुसार पेट का स्नान देना चाहिए।

यदि स्नान देते समय रोगी को पाख़ाना और क़ै आवे, तो पाख़ाना और क़ै कराकर फिर तुरन्त स्नान देना चाहिए, मैंने स्वयम् हैज़े के कई रोगियों पर इसका प्रयोग किया है और आशातीत सफलता प्राप्त हुई है, हैज़े के आक्रमण पर इस स्नान का इतना शीघ्र प्रभाव पड़ता है जिसकी समता, कोई

अन्य चिकित्सा नहीं कर सकती, यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है।

हैजे के रोगी को पेट का स्नान उतनी देर तक बराबर देना चाहिए जब तक रोगी को खूब सर्दी न मालूम पड़े। यदि पानी खूब ठंढा मिल सकता है तो रोगी का रोग निवारण निश्चित है।

प्लेग और उसके फैलने का कारण

प्लेग बहुत भयंकर बीमारी है, जहाँ प्लेग फैलता है और जो प्लेग में बीमार होता है, उसकी मृत्यु ही समझना चाहिए। लोगों का अनुमान है कि प्लेग के रोगियों में कदाचित् पाँच-सात प्रतिशत रोगी ही मृत्यु से बचते हैं।

प्लेग के सम्बन्ध में अभी तक यह निश्चय किया गया है कि प्लेग के कीड़े होते हैं। ये कीड़े जब उत्पन्न होते हैं तो ऐसे स्थानों में जहाँ चूहों का संसर्ग सब से पहले होता है ये कीटाणु चूहों के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और पेट में अथवा रक्त में पहुँचते ही चूहा बीमार हो जाता है और मर जाता है।

प्लेग के कीटाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। जब वे चूहे के शरीर में नाक के द्वारा अथवा किसी अन्य मार्ग से पहुँच जाते हैं तो चूहे के रक्त में मिलते ही उस के पेट और शरीर के भीतर सैकड़ों प्लेग के कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं, चूहे के मर जाने पर ये कीटाणु,

नाक के मार्ग से चूहे के पेट से निकल कर वायु में मिश्रित हो जाते हैं। ऊपर यह बताया जा चुका है कि वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि वायु में मिलकर मनुष्यों के पेट में नाक के मार्ग से चले जाते हैं और किसी को कुछ मालूम नहीं होता। इन कीटाणुओं के प्रवेश करते ही आदमी बीमार पड़ते हैं। इसकी बीमारी में बड़े जोर का ज्वर आता है और प्लेग की गिल्टी निकलती है।

प्लेग से बचने का उपाय

प्लेग के सम्बन्ध में यह सभी को मालूम है कि पहले चूहे मरते हैं। कुछ डाक्टरों का यह भी कहना है कि प्लेग के रोग-कीटाणु प्रवेश कर जाने से ही चूहों की मृत्यु होती है और चूहों के मर जाने पर उनके शरीर से जो गंध उठती है, वह प्लेग उत्पादक होती है। उनकी गंध साधारण वायु में मिश्रित हो जाती है और गंध के रूप में मिले हुए रोगाणु साधारण वायु के साथ जिस मनुष्य के शरीर में प्रवेश करती है उसी को प्लेग का रोगी बना देती है।

इस बीमारी में सब से बड़ी बात यह है कि चूहों के मरने से हमें इस बात की सूचना मिल जाती है कि प्लेग उत्पादक रोगाणु इस घर में, इस गाँव में अथवा इस नगर में प्रवेश कर चुके हैं, यह जानते ही पहला काम यह होना चाहिए कि जितनी जल्दी हो सके, उस घर को, उस स्थान को कुछ दिनों के लिए छोड़

देना चाहिए। यदि किसी गाँव के किसी एक घर में चूहे मरे हों तो उसी घर के लोगों को नहीं; वरन् सारे गाँव के लोगों को अपने अपने घरों को छोड़ कर, गाँव से कम से कम एक मील की दूरी पर, किसी बाग़ में, अथवा किसी बड़ी नदी के किनारे अपने रहने के लिए प्रबन्ध कर लेना चाहिए। यदि चूहे मरने के दो घंटे, चार घंटे तक में वह गाँव छोड़ कर लोग बाहर मैदानों में, बाग़ों में—जहाँ की वायु शुद्ध हो, सप्राण हो—चले जाँय, तो उस गाँव के सभी लोग इस भयंकर बीमारी से अपनी रक्षा कर सकते हैं।

यदि ऐसा करने पर भी और गाँव बस्ती छोड़ कर चले जाने पर भी, एक या दो आदमी प्लेग में बीमार हो जाँय तो गाँव के सभी लोगों का कर्तव्य है कि रोगी आदमी को सब से अलग, दूर किसी अन्य स्थान में रखे जाने और उसकी चिकित्सा कराने का प्रबंध करें। जिस घर का वह आदमी बीमार हो, उसको बिना किसी रुकावट और इनकार के इस प्रबंध में सहायता करनी चाहिए। यदि ऐसा न किया जाएगा तो एक दो नहीं, सैकड़ों मनुष्यों की मृत्यु अवश्यम्भावी है।

जितनी जल्दी हो सके, प्लेग के रोगी को मनुष्यों के संसर्ग से अलग करके दूर रखे। उसकी उचित चिकित्सा का प्रबंध करे। उसकी चिकित्सा की चिंता करने के पहले यह अत्यंत आवश्यक होगा कि उसका मल और मूत्र जमीन खोदकर गाड़ दिया जावे।

उसके थूक पर तुरंत खूब मिट्टी डाली जाय। उसके कपड़े नित्य बदले जाँय, उसके उतारे हुए कपड़े खौलते हुए पानी में डालकर खूब उबाले जाँय। इस प्रकार का प्रबंध कर लेने से उस रोगी के विषैले कीटाणु दूसरों तक न पहुँच सकेंगे और इस प्रकार न जाने कितने लोगों की रक्षा होगी। उस रोगी के पास जो लोग रह कर, उसकी चिकित्सा आदि का प्रबंध करें, उनको चाहिए कि वे बहुत सावधानी के साथ रहें और अपने घर तथा गाँव के लोगों में आकर मिलने तथा उनके संसर्ग में रहने की कुछ समय तक चेष्टा न करें।

बाहर निकले हुए जब पैंतालीस दिन से अधिक हो जाँय, और कोई आदमी इस बीच में बीमार न पड़े, इसके साथ ही जब इस बातका अनुमान हो कि गाँव की वायु अब शुद्ध हो गयी होगी। वायु में मिला हुआ रोग का विषाक्त प्रभाव अब शेष रहने का कोई प्रमाण नहीं। इस प्रकार का पूर्ण विश्वास हो जाने पर किसी अच्छे दिन, अपने घर और गाँव लौट जाने का फिर उपक्रम करे। घरों में जाने और रहने के पूर्व, उनको भीतर से बाहर तक, भली भाँति साफ कराके और लिपवा-पुतवा कर, एवम् वायु शुद्ध करने के लिए गाँव में एक काफी बड़ा हवन करा के, घरों में आना चाहिए।

जूड़ी-बुखार और मलेरिया

इन ज्वरों में जाड़ा देकर बुखार आता है और ये ज्वर प्रायः

कुआर, कातिक में आरंभ होते हैं। इन दिनों इन बुखारों का बहुत प्रकोप होता है। और बहुत अंशों में तो यह होता है कि कुँआर तथा कातिक में जिसको बुखार आना आरंभ होता है उसका जाड़े-भर फिर पीछा नहीं छोड़ता।

बड़े-बड़े चिकित्सकों का मत है कि ये ज्वर भी एक प्रकार के कीड़ों से ही उत्पन्न होते हैं और जो कीड़े इन ज्वरों को फैलाते हैं, एक प्रकार के मच्छड़ ही होते हैं। कुछ लोगों का यह भी मत है कि पेट के अशुद्ध होने, मल के साफ़ न होने और अजीर्ण आदि के कारण भी ये ज्वर उत्पन्न होते हैं। वास्तव में दोनों ही बातें ठीक हैं और दोनों ही बातों की सावधानी रखनी चाहिए।

जूड़ी-बुख़ार से बचने के लिए दो प्रकार की बातों पर ध्यान देना चाहिए। वे दोनों बातें, जिनका ध्यान रखने से इन ज्वरों से रक्षा हो सकती है, इस प्रकार हैं—

१—पेट को इन दिनों में खूब साफ़ रखना चाहिए। यदि पाख़ाना साफ़ न होता हो तो जुलाब अथवा यनीमा लेकर पेट को शुद्ध कर लेना चाहिए और उसके पश्चात् सदा कम खाना और हलका खाना खाने का प्रयत्न करना चाहिए। जब भूख न लगी हो अथवा जिस दिन पाखाना खुल कर न हुआ हो, उस दिन भोजन न करना चाहिए और जब पाखाना साफ़ हो जाय एवम् खूब खुल कर भूख लगे तो खाना चाहिए।

२—जिस मकान या जिस स्थान में रहते हों, उसके

आस-पास मच्छड़ पैदा करने वाला कोई स्थान न होना चाहिए। यदि कोई पानी का छोटा-मोटा गड्ढा हो तो उसको मिट्टी डाल कर पटा देना चाहिए। यदि घर में मच्छड़ हों तो घर को खूब साफ करवा कर लिपा-पुता देना चहिए। इस पर भी यदि मकान से मच्छड़ न जाँय और रात को मालूम हों तो मकान को बंद करके, गन्धक जला देना चाहिए। उसके धुयें से सब मच्छड़ मर जाँयगे। यदि सप्ताह में एक बार ऐसा कर दिया जाय तो मकान में मच्छड़ नहीं रह सकते।

१३—व्यायाम का स्वास्थ्य पर प्रभाव

हमारे शरीर के भीतर न जाने कितने छोटे और बड़े अंग-प्रत्यंग काम करते हैं। वे काम करते-करते, कभी-कभी सुस्त पड़ जाते हैं, कभी ऐसा भी होता है कि दोष और विकारों के संयोग से वे अंग ढीले, निकम्मे और कामचोर हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में उनका काम या तो बंद हो जाता है अथवा बहुत कम हो जाता है। जब हमारे शरीर में एक अंग भी अपना काम करना बंद कर देता है, तो हमारे शरीर के कार्य-क्रम में अंतर पड़ जाता है और हम अपने आप को बीमार कह कर पुकारने लगते हैं।

बीमार होने पर हमको दवाओं की आवश्यकता होती है, डाक्टरों और वैद्यों की सेवा करनी पड़ती है। जब एक बार भी हमारे शरीर का यह व्यापार आरंभ हो जाता है तो फिर जीवन-भर यही करते बीतता है। उस अवस्था में हमें कितना कष्ट मालूम पड़ता है यह बात हम ही जानते हैं। हमारे मुंह से रात-दिन यही निकलता है, ईश्वर न करे, कभी कोई बीमार हो—कभी किसी का स्वास्थ्य नष्ट हो!

हमारे स्वास्थ्य नष्ट होने का कारण क्या है—हमारे शरीर को बीमारी क्यों लगती है? इस प्रकार के सभी प्रश्नों का उत्तर यही दिया जा सकता है कि हम व्यायाम नहीं करते

निस्सन्देह, व्यायाम हमारे शरीर का उसी प्रकार पालन-पोषण करते हैं, जिस प्रकार माता बच्चे का! जो लोग व्यायाम करते हैं, उनको, उन सभी बातों का ध्यान रखना पड़ता है जो स्वास्थ्य के लिए उपयोगी और लाभ दायक होती हैं।

व्यायाम का उपयोग

व्यायाम करने से शरीर में स्फूर्ति पैदा होती है, शरीर बलवान और मजबूत बनता है। शक्ति और स्वास्थ्य प्राप्त होता है। चित्त प्रसन्न रहता है। साहस की वृद्धि होती है। व्यायाम, शरीर में नित नये जीवन का संचार किया करता है।

व्यायाम करने से शरीर के एक-एक अंग में जागृति उत्पन्न होती है, उनका आलस्य दूर होता है। सभी अंग और प्रत्यंग कर्मशील और सचेत बनते हैं। शरीर सुगठित हो जाता है और उसमें कान्ति तथा सौन्दर्य बढ़ जाता है। रोगों से छुटकारा मिलता है।

व्यायाम के सम्बन्ध में नियमित होना बहुत आवश्यक है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो उत्साह में आकर कभी व्यायाम शील बन जाते हैं और एक-दो दिन के बाद ही, फिर व्यायाम का नाम भी नहीं लेते। इस से कोई लाभ नहीं होता। व्यायाम से शरीर को लाभ उसी दशा में हो सकता है जब वह नियम-

पूर्वक किया जाय। दो चार दिनों के व्यायाम से नहीं वरन् नियमित व्यायाम से लाभ होता है।

व्यायाम एक प्रकार का परिश्रम है, जिसके बिना शरीर बिल्कुल निकम्मा हो जाता है और यदि अधिक दिनों तक परिश्रम करना छोड़ दिया जाय, तो शरीर से फिर किसी प्रकार सुख की आशा न करना चाहिए। शरीर इस प्रकार की अवस्था को न प्राप्त हो, इसीलिए व्यायाम करने की अत्यंत आवश्यकता है। देहात के परिश्रमशील व्यक्ति जो व्यायाम नहीं भी करते तो उनका पारश्रमिक जीवन व्यायाम की कमी को बहुत अंशों में पूरा करता है। यदि वे व्यायाम का भी कुछ अभ्यास करते रहें तो और भी अच्छा है। परंतु जो लोग परिश्रम के कार्यों से अलग रहते हैं, उनके लिए तो व्यायाम की बहुत बड़ी आवश्यकता है। शरीर को परिपुष्ट होने के लिए और स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए व्यायाम की उन्हें उतनी आवश्यकता है जितनी आवश्यकता सम्भव हो सकती है। व्यायाम से शरीर के अनेक विकार और रोग उत्पन्न करने वाले कारणों का नाश होता है। शरीर निर्वल होने के स्थान पर शक्तिशाली और पुष्ट बनता है।

हमारे शरीर के लिए व्यायाम कितना उपयोगी है इस बात को बहुत अंशों में लोग जानते और समझते हैं फिर भी लोग उसकी तरफ़ से आंखें मूँदे रहते हैं। इसका कारण है

शरीर-शास्त्र और स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों का लोगों को यथोचित ज्ञान न होना और मोटे रूप में जो लोग कुछ समझते भी हैं उनके हृदयों में कुछ उपेक्षा का भाव रहा करता है। उसका फल यह होता है कि व्यायाम उनसे हो नहीं पाता। कितने ही लोग व्यायाम करना चाहते हैं और व्याम को उपयोगी समझते हैं लेकिन कह देते हैं—क्या करें साहब, हमारे पास तो समय नहीं है!

समय की शिकायत बिल्कुल ही व्यर्थ है। वे नहीं करना चाहते, इसलिए नहीं करते। न जाने कितने काम ऐसे होते रहते हैं, जिनमें अनावश्यक समय बीता करता है। व्यायाम जैसे कामों के लिए समय नहीं? सच्ची बात तो यह है कि उनको व्यायाम की आवश्यकता नहीं है जिस घड़ी से वे व्यायाम की आवश्यकता समझने लगेंगे, उसी समय से उनको समय मिलने लगेगा।

व्यायाम और उसके भेद

संसार व्यायाम की आवश्यकता को दिन पर दिन स्वीकार करता जाता है। जितना ही इसकी आवश्यकता का बोध होता जाता है उतना ही उससे प्रेम होता जाता है। इस प्रेम का यह परिणाम हुआ है कि संसार में आज अनेक प्रकार के सरल और सुभीते के व्यायाम किये जाते हैं। देशी और विदेशी व्यायामों में कुछ भेद अवश्य हुआ है परंतु उन सबसे लाभ प्रायः एक ही-

सा होता है। साधारण रूप में देशी व्यायामों में निम्नलिखित व्यायाम काम में लाये जाते हैं—

(१) डंड (२) बैठक (३) मुगदर (४) लेज़म

विदेशी व्यायामों में डंबल्, चेस्ट, ऐक्स पैंडर्स आदि का उपयोग किया जाता है। इनके सिवा गेंद, फ़ुटबाल, क्रिकेट टेनिस और हाकी के खेल व्यायाम का काम करते हैं। देशी और विदेशी—दोनों ही प्रकार के व्यायामों में उपयोगिता की दृष्टि से, जहाँ तक मैं समझ सका हूँ देशी व्यायाम ही मेरी समझ में उत्तम आये हैं। शरीर-गठन में भी विदेशी व्यायाम की अपेक्षा देशी व्यायाम अधिक उपयोगी हैं इस बात के प्रमाण में देशी और विदेशी पहलवानों के शरीरों का यथासाध्य मैंने अध्ययन किया है। उनकी तुलनात्मक विवेचना से भी मैं इसी निर्णय पर पहुँचता हूँ कि शरीर-गठन का कार्य जितना अच्छा हमारे देशी व्यायामों से होता है उतना विदेशी व्यायामों से नहीं होता। विशेष कर कमर से नीचे के अंगों को सुसम्पादित करने और पैरों तथा रानों को सुगठित करने में विदेशी व्यायाम, हमारे यहाँ के व्यायामों की अपेक्षा कम सफल होते हैं।

हमारे यहाँ साधारणतया डंड और बैठक के व्यायाम ही अधिक किये जाते हैं। यदि सच पूछा जाय तो यही दोनों प्रमुख व्यायाम हैं इनमें सरलता है विशेषता है और अत्यंत उपयोगिता है। एक बच्चे और निर्बल से निर्बल व्यक्ति से लेकर अच्छे से

अच्छे पहलवान, इन्हीं दोनों व्यायामों की शरण लेते हैं। प्रत्येक अवस्था में ये दोनों लोक-प्रिय हैं।

व्यायाम, उसका स्थान और समय

व्यायाम सम्बंधी कुछ जरूरी बातें बताने के पहले यह बताना आवश्यक जान पड़ता है कि व्यायाम कहाँ पर कैसे स्थान पर और किस समय करना चाहिये।

स्थान के सम्बंध में सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसका स्वास्थ्यप्रद होना ही मुख्य ध्येय है। इसी आधार पर निम्नलिखित बातों का विचार कर लेना चाहिये—

(१) व्यायाम का स्थान यथासम्भव एकान्त और विशेष कर स्त्रियों के आने-जाने उनके निकट होने से पृथक हो।

(२) जहाँ तक हो सके आबादी से कुछ दूर हो। इसलिए कि जहाँ पर मनुष्यों का अधिक निवास होता है वहाँ की वायु अशुद्ध होती है।

(३) बस्ती से अलग होने पर भी कोई ऐसा स्थान न हो जहाँ की वायु किसी कारण को पाकर खराब हो गयी हो।

(४) किसी बड़े जलाशय नदी आदि का विशुद्ध किनारा सुन्दर सुगन्धित पुष्पमय स्थान; बाग-बगीचा जैसा कोई स्थान हो तो बहुत ही अच्छा होता है।

व्यायाम का समय कैसा होना चाहिए। यह जानना भी कम

आवश्यक नहीं है। व्यायाम के समय हमको इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उस समय हमारा पेट न तो बहुत भरा ही हो और न हम बहुत भूखे ही हों। दोनों ही अवस्थाओं में व्यायाम से कुछ क्षति की सम्भावना होती है। इसलिए ऐसे समय में हमें व्यायाम करना चाहिये, जब पेट की अवस्था साधारण हो। न तो वह बहुत खाली हो और न बहुत भरा हो।

इसके लिए इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि व्यायाम के समय हमारा मन अत्यन्त शुद्ध, शांत और प्रसन्न होना चाहिए। इन तीनों ही बातों का हमारे शरीर पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। इन सभी बातों को सामने रख कर जब कुछ सोचा जाता है तो प्रातःकाल का समय ही अधिक अच्छा मालूम होता है। सन्ध्याकाल भी अच्छा हो सकता है और सन्ध्याकाल कितने ही लोग व्यायाम करते हैं किन्तु सन्ध्याकाल से प्रातःकाल अधिक अच्छा होता है। जो किसी कारण से प्रातःकाल का समय न रखसकते हों उनको संध्याकाल में ही व्यायाम कर लेना चाहिए।

एक बात और है। जो लोग थोड़ा-सा व्यायाम करते हैं उनके लिए तो कोई विशेष बात नहीं हैं। परंतु जो अधिक व्यायाम करते हैं उनको गर्मी अधिक बढ़ने के कारण बहुत देर तक भूख नहीं लगती। जिन लोगों का अपनी विपरीत अवस्थाओं के कारण व्यायाम के बाद ही भोजन करना पड़ता है, उनको आवश्यकता

के विना भोजन करना ही पड़ता है परंतु इससे हानि भी होती है अधिक परिश्रम करने से गर्मी बढ़ जाती है और उस गर्मी का यह प्रभाव होता है कि भूख मारी जाती है। उस समय इच्छा न होने पर कुछ न खाना चाहिए और शीतल तथा स्वास्थ्यप्रद वायु में खूब टहलना चाहिए। यदि हो सके तो उस गर्मी को शांत करने के लिए रुचिकारक, शक्ति वर्द्धक किंतु शीतल पदार्थों का सेवन करना चाहिए। इन पदार्थों में शुद्ध दूध बहुत ही उपयोगी है। यदि ऐसा न हो सके तो उस समय तक जब तक खूब भूख न मालूम पड़े, भोजन न करना चाहिए, ऐसा करने से कुछ समय में, उस बढ़ी हुई गर्मी के शांत हो जाने पर खूब तेज़ भूख लगेगी, और उस समय का किया हुआ भोजन रुचिकारक भी मालूम होगा। साथ ही, शरीर में लगेगा भी।

जो लोग पहले पहल व्यायाम करना आरम्भ करें, उनको चाहिए कि पहले दिन बहुत थोड़ी मिहनत करें। आरम्भ में दस-दस, ग्यारह-ग्यारह डंड बैठक ही काफ़ी होती हैं, एक दो दिन के बाद, पाँच, पाँच बढ़ा देना चाहिए। इन प्रारम्भिक दिनों में हाथों-पैरों और शरीर में खूब दर्द मालूम होगा, इससे डर-कर कभी व्यायाम बंद न कर देना चाहिए, हाँ एक बात का स्मरण रखना चाहिए कि जब तक दर्द कम होता हुआ न जान पड़े, बढ़ाना न चाहिए, आरंभ में चार-पाँच दिन दर्द रहेगा,

उसके बाद कम होने लगेगा, कम होने पर व्यायाम धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।

व्यायाम की कुछ सीमा नहीं होती, पन्द्रह-बीस से लेकर एक-एक हजार तक डंड और बैठकें की जाती हैं, परंतु अधिक व्यायाम पहलवान ही करते हैं, कोई भी व्यक्ति पहलवान हो सकता है और वह कभी भी किसी भी अवस्था में पहलवान हो सकता है। अधिक व्यायाम करने के साथ ही अच्छे भोजन की आवश्यकता होती है। व्यायाम करने वाले को सदा रक्त बढ़ाने वाले पदार्थों का सेवन करना चाहिए। इस प्रकार के पदार्थों में दूध, घी, मक्खन, मलाई, रबड़ी, सभी प्रकार के फल अधिक उपयोगी होते हैं। अधिक व्यायाम के साथ, यदि इस प्रकार के पदार्थों का सेवन न किया जाय, तो शरीर का रक्त सूख जाता है और व्यायाम करने वाले का शरीर तथा मुख पीला पड़ जाता है, इससे कभी-कभी व्याधियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। यदि खाने-पीने का अच्छा सुभीता न हो तो साधारण थोड़ी संख्या में डंड-बैठक करने में किसी प्रकार की क्षति नहीं है।

जो लोग व्यायाम नहीं कर सकते

ऐसे भी कुछ लोग होते हैं जो व्यायाम नहीं कर सकते। इसके कई एक कारण हो सकते हैं। कुछ तो व्यायाम पर

नहीं रखते, कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं, जो व्यायाम को कुछ अनावश्यक समझते हैं, इसलिए उदासीन रहते हैं, और कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो अपनी निर्बलता, कमजोरी या वृद्धावस्था के कारण व्यायाम करने में असमर्थ हैं। उनको क्या करना चाहिए ?

इसके सम्बंध में इतना लिख देना तो आवश्यक है ही कि अनावश्यक समझने वाले अथवा अपनी उपेक्षा का कोई और कारण रखने वाले व्यायाम के सम्बंध में बहुत बड़ी भूल करते हैं, उनको व्यायाम की उपयोगिता का अनुभव करना चाहिए, सोचना चाहिये और यथासम्भव उसका अभ्यास करना चाहिए। फिर भी जो न कर सकें, उनको अपना स्वास्थ्य बढ़ाने और उसको क़ायम रखने के लिए नीचे लिखी बातों का उपयोग करना चाहिए—

(१) प्रातःकाल और संध्याकाल खुली वायु और स्वास्थ्य-प्रद स्थानों में टहलना चाहिए।

(२) चार-पाँच फर्लांग से लेकर एक, दो, तीन मील तक जितना भी हो सके, खूब तेज़ चलना चाहिए जिससे उनकी साँस खूब जोर से चलने लगे।

(३) किसी बहते हुए जलाशय या नदी में तैरना चाहिए, सभी प्रकार के साधारण और असाधारण व्यायामों से लेकर, मामूली टहलने के अभ्यास तक, निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) साँस लेने का काम, मुँह से नहीं, सदा नाक से ही लेना चाहिए। यदि साँस जोर की चलने से और प्राण ऊबने से बिना मुँह खोले न रहा जाय, तो भी मुँह को बंद रखकर नाक से ही साँस लेना और कुछ देर के लिए अपने उस काम में रुक जाना चाहिए और जब साँस हजम होजाय, तो फिर आरम्भ कर देना चाहिए।

(२) व्यायाम करते समय हमें खूब अनुभव करना चाहिए, कि हमारा शरीर सुन्दर बन रहा है, हमारे हाथ और पैर सुगठित हो रहे हैं। हमारे हाथों के कल्ले और पैरों की रानें खूब मोटी हो रही हैं।

(३) यदि हम साधारण टहलने, जोर से चलने या दौड़ने का काम कर रहे हैं, तो हमें अनुभव करना चाहिए कि स्वच्छ तथा शुद्ध वायु से और सूर्य के सुन्दर प्रकाश से स्वास्थ्य आ-आ कर हमारे शरीर में खूब प्रवेश कर रहा है और हम खूब स्वस्थ हो रहे हैं।

बाल-साहित्य में क्रान्ति

आदर्श ग्रंथमाला

दारागंज, प्रयाग

बाल-ग्रन्थावली

ज्ञान की पिटारी

(संकलयिता—जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी भूषण, विशारद)

क्या आसमान गिर सकता है ?

क्या मछली पेड़ पर चढ़ सकती है ?

क्या साँप बोलते हैं ?

गुलाब लाल क्यों होता है ?

आंधी क्यों चलती है ?

रात को अंधेरा क्यों होता है ?

हमें छींक क्यों आती है ?

फव्वारा क्यों छूटता है ?

लोहे का जहाज़ क्यों तैरता है ?

पहले बीज हुआ या वृक्ष ?

क्या गेंडे के चमड़े में गोली असर नहीं करती ?

ज्ञान की पिटारी में ऐसे ही विचित्र प्रश्नों के उत्तर हैं। पुस्तक क्या है ज्ञान का भंडार है। मूल्य १)

हँसी के चुटकुले

रोते हुए.को भी हंसाने वाले मनोरञ्जक चुटकुले। पढ़ने पर
ंते हंसते पेट फूल जाता है। मूल्य ॥)

फुलझड़ी

बालक बालिकाओं के लिए शिक्षाप्रद कहानियाँ। रङ्ग विरङ्गी
ी में छपी हुई। मूल्य ॥)

चन्दा मामा

चन्दा मामा की बड़ी मनोरञ्जक कहानी। भड़कीला आवरण
। रङ्ग विरङ्गी छपी हुई। मूल्य ।=)

जानवरों की कहानियां

ानवर भी बुद्धि रखते हैं, हंसते हैं, दुश्मन से बदला
ते हैं। इनकी सच्ची और मनोरञ्जक कहानियां। मूल्य ।=)

मस्तराम

ंसाने वाली छोटी छोटी मजेदार कहानियां जिन्हें पढ़ कर
लोट पोट हो जाते हैं मूल्य ।–)

सोने की परी

सोने की परी, समुद्र की परी और फूल परी की तीन बहुत ही मजेदार कहानियां। मूल्य।-)

सियार पंडित

सियार पंडित की बड़ी ही मजेदार कहानी। रंग बिरं... छपी हुई। मूल्य।)॥

भोंपू

इस पुस्तक की कहानियां पढ़ने में बच्चों को उतना ही म... आता है जितना भोंपू बजाने में। मूल्य॥)

हिंडोला

हिंडोला में झूलते हुए जो आनन्द मिलता है उसे बच्चे इस पुस्तक की कहानियां पढ़कर ले सकते हैं। मूल्य॥)

विचित्र देश

इसमें ऐसे विचित्र देशों में एक आदमी के जाने का हा... लिखा है जहाँ के आदमी कहीं अंगूठे के बराबर छोटे और कह... पहाड़ की तरह बड़े होते हैं। रङ्ग बिरङ्गी छपी, भड़कीला चित्र मूल्य।=)

जादू का देश

एक विचित्र देश की बड़ी ही आश्चर्य-भरी और मनोरञ्जक कहानी। रङ्ग-बिरङ्गी छपी। रङ्ग-बिरङ्गा भड़कीला आवरण पृष्ठ। मूल्य ||=)

सोने का तोता

सोने के तोते की बड़ी मनोरञ्जक कहानी। रङ्ग-बिरङ्गी छपी। भड़कीला आवरण पृष्ठ। मूल्य ||=)

परी देश

अत्यन्त रोचक कहानियाँ जिन्हें पढ़ना शुरू कर समाप्त किए बिना बच्चे मान ही नहीं सकते। रङ्ग-बिरङ्गा भड़कीला आवरण पृष्ठ। मूल्य ||=)

मोतियों की माला

छोटी छोटी उपदेश-पूर्ण और मनोरञ्जक कहानियां। मूल्य ||)

हँसी की कहानियां

हँसाने वाली विचित्र कहानियां। मूल्य ||=)

उपदेश की कहानियां

बच्चों को शिक्षा देने वाली मनोरञ्जक कहानियां। मूल्य ॥=)

सुनहरी कहानियां

सभी कहानियां सोने की चीजों पर ही हैं और सोने की तरह सुन्दर और बहुमूल्य हैं। मूल्य ।)

सोने का हंस

मनोरञ्जक और रसीली कहानियां। मूल्य ।=)

तन्दुरुस्त बालक

बच्चों को तन्दुरुस्त रहने के उपाय बताने वाली अ_ पुस्तक। मूल्य ।–)

अन्य पुस्तकें

स्वास्थ्य का सुगम मार्ग

स्वास्थ्य रक्षा का मार्ग बताने वाली अत्युत्तम पुस्तक। मूल्य ।)